॥ श्रीहरिः ॥

रामलीला नाटक

प्रकाशक
देहाती पुस्तक भण्डार
4422, नई सड़क, दिल्ली-6
फोन/फैक्स : 23261030, **23985175**,

लेखक:
श्री विश्वेश्वरदयाल गुप्त
'कुशल' एम. ए.

मूल्य
स्वदेश में: 80/- (अस्सी रुपये)

मुद्रक: स्टार ऑफसेट प्रिंटिंग प्रैस
2229, फरासखाना, दिल्ली-6

100 (एक सौ) प्रतियां प्रकाशित

विश्वेश्वरदयाल गुप्त 'कुशल'

भूमिका

(चौथे संस्करण की)

'रामलीला नाटक' का यह चौथा संस्करण है। पहले तीन संस्करणों को अपनाने में जनता ने जिस महान् उदारता का परिचय दिया है उसके लिए मैं अपने प्रिय पाठकों का हृदय से आभारी हूं। विभिन्न स्थानों की रामलीला समितियों ने इस पुस्तक की जो प्रशंसा की है. उसका बखान मेरे मुंह से शोभा नहीं देता। वास्तव में रामलीला की ऐसी पुस्तक का अभाव अनुभव किया जा रहा था, जिसमें रामायण की प्रत्येक घटना को नाटक रूप में दर्शाया गया हो। यद्यपि यह महान् कार्य मेरे जैसे अल्प बुद्धि के लिए अत्यन्त कठिन था परन्तु सर्वशक्तिमान् परमात्मा की असीम कृपा और धार्मिक जनता के आशीर्वाद से मैं इस कार्य को करने में सफल हुआ हूं, यह मेरा सौभाग्य है।

तीसरे संस्करण में मैंने दूसरे संस्करण की अनेक त्रुटियों को निकालने का प्रयत्न किया था, जिनका संक्षिप्त विवरण उसकी भूमिका में दे दिया गया था। अब चौथा संस्करण प्रस्तुत करने से पहले कुछ और त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है और निम्न विशेषताएं लाने की चेष्टा की गई है। फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि इस संस्करण में कोई दोष नहीं रहा। मैं विद्वान पाठकों से अनुरोध करता हूं कि पुस्तक की कमियों से मुझे फिर सूचित करने की कृपा करें, जिससे अगले संस्करण में उनको दूर करने का प्रयत्न किया जा सके।

१. प्रस्तुत संस्करण में और भी अधिक सरल एवं प्रचलित भाषा का प्रयोग करने का प्रयत्न किया गया है।

२. बहुत से अनावश्यक वार्तालाप निकालकर अधिक रोचक बढ़ा दिये गये हैं।

३. कुछ गाने जो अप्रचलित से प्रतीत हुए, उनके स्थान पर नये

गाने रख दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त अनेक नये सुन्दर और आकर्षक गानों से पुस्तक को सजाया गया है।

४. पुराने संस्करण में अनेकानेक जो छापे की गलतियां थीं उन्हें ठीक करा दिया गया है।

५. प्रकाशक ने अपनी ओर से छपाई आदि में कई परिवर्तन करके पुस्तक को अधिक सजीव और आकर्षक बना दिया है।

'रामलीला नाटक' का कथानक गोस्वामी तुलसीदास' का राम चरित मानस है। इसमें लेखक के विचारों का कोई समावेश नहीं। सम्पूर्ण नाटक को १२ अंकों में विभाजित करके यह ध्यान रखा गया है कि एक अंक एक दिन की लीला के लिए पर्याप्त हो। साथ २ नाटकशाला के लिये उचित संकेत देकर इसे रगमंच के लिये और भी उपयुक्त बना दिया गया है। मेरा विश्वास है कि जनता इसे पसन्द करेगी।

धर्म प्रचार के लिए रामलीला खेलने वाली समितियां इस पुस्तक से सहर्ष सहायता ले सकती हैं परन्तु व्यावसायिक कम्पनियों और टिकट लगाकर खेलने वाली सभाओं को लेखक की आज्ञा के बिना इसे रंगमंच पर लाने का अधिकार नहीं है। मेरा यह भी अनुरोध है कि कोई सज्जन इस पुस्तक को सम्पूर्ण या इसका कोई भाग प्रकाशित करने की चेष्टा न करें अन्यथा उनके विरुद्ध वैधानिक कार्रवाई की जायगी।

पुस्तक में मेरा पता न होने की अनेक सज्जन शिकायत करते हैं—वास्तव में उनका कहना ठीक है। इस संस्करण में मैं अपना पता देकर पाठकों से निवेदन करता हूं कि वे रामलीला नाटक के सम्बन्ध में मुझे अपनी अमूल्य राय लिखने की अवश्य कृपा करें। अगले एडीशन में उनकी सम्मति को छापा जावेगा। पुस्तक की कमियों की ओर मेरा ध्यान दिलाने वाले सज्जनों का मैं विशेष आभारी हूंगा।

लेखक
बिश्वेश्वर दयाल गुप्त 'कुशल' एम० ए०
नेहरू रोड—बड़ौत (मेरठ)

ॐ

मंगलाचरण

स्तुति श्री गणेश जी की

जय गणेश, महेश, सुरेश प्रभु, नाथ के हाथ ही दास की आबरू,
तू ही तू, तू ही तू, तू ही तू, तू ही तू ।।

शेर—कुण्डल तिलक मुकुट और माला विशाल साजे ।
सेवा में रिद्धि सिद्धि आसन पै हो विराजे ।।
भयहारी शोकनाशक भव-सिन्धु के हो त्राता ।
सुख सम्प्रदा के दानी गुण ज्ञान मुक्ति दाता ।।

प्रतिपाल दयाल कृपाल पिता, सदा कीजियो दोनों पै अपनी दया;
अब आसरा तेरा ही आन लिया ।
जय गणेश ... ...

शेर—तुम सम नहीं जगत में संकटहरण है दूजा ।
देवन में सब से पहले होती है नाथ पूजा ।।
इक बार जो श्रद्धा से चरणों में सिर झुकाए ।
दुख दर्द दूर हों सब मन की मुराद पाए ।।

सुनो नाथ अनाथ की बात जरा, मति मन्द कुशल अरु काम बड़ा;
जरा दीजियो ज्ञान की राह दिखा ।
जय गणेश — ... ...

ईश्वर-प्रार्थना

तुम जगत के स्वामी, अन्तर्यामी सर्वाधार हो ... ...तुम
असुरारी—भवभयहारी ......
महान, दो ज्ञान सदा आ ... आ ... आ ... तुम

शेर—१. मंगलकरण हो कष्ट निवारण हो श्याम हो ।
अशरण शरण हो दीन उबारन हो राम हो ।।

२. हो दीनानाथ दीन के भक्तों के प्राण हो।
रक्षक हो देश धर्म के सन्तों की जान हो॥
३ सेवक खड़े द्वार पे कल्याण कीजिये।
रखिये कुशल से देश को सन्मान दीजिए॥
असुरारी—भवभयहारी
महान, दा ज्ञान, सदा… आ…आ…आ…… तुम
(सूत्रधार और नटी का प्रवेश)

सूत्रधार—कोई विष्णु कोई शङ्कर कोई करतार रटता है।
कोई निर्गुण सगुण जगदीश और दातार रटता है॥
निरंजन शोकभन्जन दीन का आधार रटता है।
निराकारी कोई कहता कोई साकार रटता है॥
उजागर प्रेमसागर श्याम और गुणधाम कहते हैं।
श्रद्धा के साथ प्रेमीजन उन्हें ही राम कहते हैं॥

नटी—नाथ ! भगवान के इतने नाम क्यों बखाने जाते हैं ?

सूत्रधार—प्रिय ! इसके कई कारण हैं। एक तो श्रद्धालु लोग अपनी अपनी रुचि अनुसार भगवान को अपने प्रिय नाम से पुकारते हैं, कोई दीनानाथ कहता है तो कोई विश्वपाल; कोई भक्त-वत्सल कहता है तो कोई दीनदयाल। दूसरे भगवान में अनेक शक्तियां हैं और उनमें से प्रत्येक शक्ति के लिए भगवान का एक-एक नाम हो गया है—जैसे विष्णु अर्थात पालने वाला, सुखधाम अर्थात सुखका स्थान, मुनिमन रंजन अर्थात प्रेमियों के हृदय को आनन्द देने वाला। तीसरे समय-समय पर जब भगवान अवतार लेते हैं तो वे किसी दूसरे ही नाम से पुकारे जाते हैं :—

रचाई जैसी लीला नाम भी वैसे ही कहलाये।
पुकारे भी गये वैसे ही जैसे रूप में आये॥

नटी—नाथ ! ऐसे ही समय तो सांसारिक मनुष्यों की बुद्धि संकोच में पड़ जाती है। क्या भगवान भी समय-समय पर जन्मते और मरते हैं। मैंने तो उन्हें अजन्मा और अमरण ही सुना था :—

जो उत्पत्ति जगत की और फिर संहार करते हैं।
अचम्भा है कि वे किस भांति जीते और मरते हैं ॥

सूत्रधार—नहीं प्रिय ! भगवान वैसे तो जन्म और मरण से रहित हैं, परन्तु समय-समय पर दुष्टों के नाश और भक्तों के हित के कारण अवतार लेकर अद्भुत लीलाएं रचते हैं। अन्याइयों को संहारते और सन्तों को सुख पहुंचाते हैं :—

उन्हें यों तो नहीं है काम जीने और मरने से।
परन्तु शीघ्र आते हैं जगत के याद करने से ॥
हुई जब धर्म की हानि तो फिर ऊंचा उठाते हैं।
रचाकर खेल जगत में धर्म-मर्यादा बनाते हैं ॥

नटी—नाथ ! यह बात तो मेरी समझ में नहीं आई। भगवान को सर्वशक्तिमान कहते हैं। फिर क्या वे निराकार रहते हुए अपनी शक्ति द्वारा दुष्टों का नाश नहीं कर सकते जो उन्हें अवतार लेने की आवश्यकता होती है।

सूत्रधार—सब कुछ है, परन्तु अवतार लेने से कार्य अधिक सिद्ध होता है। एक तो भक्तों को साक्षात् दर्शन हो जाते हैं; दूसरे अन्याई अपने पाप कर्म का फल पाते हैं। इसके अतिरिक्त भगवान जब आते हैं तो ऐसी मर्यादा बना जाते हैं कि जिस पर चलने से मनुष्य का कल्याण हो और संसार को धर्म-अधर्म की पहचान हो।

नटी—तो क्या भगवान ने कभी अवतार धारण भी किया है ?

सूत्रधार—हां, भगवान के अनेक अवतार हो चुके हैं—जैसे नृसिंह, वामन, राम, कृष्ण इत्यादि।

तेरी रचना सकल सृष्टि के कण-कण से टपकती है।
तेरी महिमा हर इक वस्तु के अन्तर में झलकती है॥
नजर हर फूल पत्तो में तेरा आकार आता है।
जिधर जाता है व्यक्ति उस तरफ भंडार पाता है॥

सुन्दर समय, मन्द सुगन्धित वायु पवित्र जल, एकान्त स्थान और वैराग्य का समागम देखकर मन में कुछ भजन करने की प्रेरणा होती है, हृदय भगवान के कमल रूपी चरणों के ध्यान में लीन होने की अभिलाषा करता है, बुद्धि में ऐसे अवसर से लाभ उठाने का उत्साह पैदा होता है, नेत्र लक्ष्मीपति की याद में बन्द होने के लिए व्याकुल हो रहे हैं :—

उमड़ता जा रहा है ध्यान का उत्साह हृदय में।
बहा है प्रेम की गंगा का इक प्रवाह हृदय में॥
पवन के वेग से परमात्मा की याद आती है।
ध्वनि जलधार की कानों में उसका गीत गाती है॥

(सोचकर) सोच लिया, अपनी आत्मा के लिये सुलभ से सुलभ मार्ग सोच लिया, कुछ समय ज्ञान-ध्यान में बिता कर फिर भूमि का चक्कर लगायेंगे और भूली-भटकी आत्माओं को मार्ग बतायेंगे :—

हजारों पातकी जिस की दया से पार होते हैं।
हजारों के लिये जिसके खुले भण्डार होते हैं॥
हजारों नाम से जिसके परम सुरधाम पाते हैं।
उसी के ध्यान में अब बैठकर मन को लगाते हैं॥

[नारद मुनि का समाधि लगाकर बैठ जाना]

(परदा गिरना)

दृश्य दूसरा

(राजा इन्द्र का दरबार)

[राजा इन्द्र मन्त्रियों सहित बैठे हैं, नाच रंग हो रहा है]

गाना

अप्सरा—तर्ज (लाल दुपट्टा मल मल का)

दरबार तेरा मस्ताना मैं गाते २ हार चलो, नैनों की बरछी
मार चली होजी-होजी।

उभरा जोवन चढ़ी जवानी चाल चलू मस्तानो
सर सर चितवन तीर चलाऊं मैं जोवन दीवाना
दरबार तेरा··· ···

भर भर भर भर हम पीते हैं जोवन-मद के प्याले।
जीवन की बगिया में खिलते नित नित फूल निराले
दरबार तेरा··· ···

[इन्द्रासन का हिलना]

इन्द्र—(स्वयं) हैं ! यह क्या ? आश्चर्य ! महान आश्चर्य ! इन्द्रासन क्यों डोलने लगा ? अफसोस !

गाना

(तर्ज—गम दिये मुस्तकिल)

मन विकल हो गया, भाग्य फिर सो गया, दुःख की उलझन,
हाय फेरी विधाता ने चितवन।

छा गई संकटों की घटायें-मन की निष्फल हुई कामनायें,
धीर खोने लगे, नष्ट होने लगे, सुख के साधन
हाय फेरी···········

अब 'कुशल' है कहां पर ठिकाना—हो गया आज शत्रु जमाना,
कैसे विपता भरू. किसके आगे करूं, दुख का वर्णन
हाय फेरी·······

(ठण्डी सांस लेकर) सम्पदा! तू किसी को आराम से नहीं बैठने देती ! मोह ! तेरे होते कोई सुख नहीं पा सकता, लोभ के काले परदे ! तू न्याय की आंखों को अन्धी बना देता है; स्वार्थ की विचित्र माया ! तू दयालु हृदय को भी कठोर बना देती है। आह ! मैं इतनी सम्पत्ति का स्वामी क्या हो गया, सारे संसार की आपत्तियां ही अपने सिर ले लीं अफसोस :—

भाग्य में हाय हमारे कभी आराम नहीं।
दिन नहीं रात नहीं सुबह नहीं शाम नहीं ।।
रोज संकट की घटा घिर के नई आती है।
मेरी एक एक घड़ी गम में गुजर जाती है ।।

मन्त्री—महाराज, आप के हृदय को दुखी देख कर सेवकों का मन निराश हो रहा है, कहिये भगवन ! आज चित्त क्यों उदास हो रहा है ?

इन्द्र—क्या बताऊं :—

हाय वह रोग है जिसकी न चिकित्सा कोई।
दर्द वह है न जिन कर सके अच्छा कोई ।।

मन्त्री—नहीं महाराज ! मन को इतना अधीर न कीजिये; चित्त को प्रसन्न करने के लिये कोई राग ही सुन लीजिये।

इन्द्र—क्या होगा ?

मेरे वेचैन दिल को यों भला कब चैन आता है।
यह आनन्द है उन्हीं के वास्ते जिनको सुहाता है।।
मेरी क़िस्मत में लिखी है विधाता ने परेशानी।
मेरी आशाओं पर फेरा मेरी तदबीर ने पानी ।।

मन्त्री—महाराज ! ऐसा क्या संकट आया ? जिसने आपके मन का इतना अधीर बनाया।

D

इन्द्र—कैसे बताऊं मन्त्री जी ! इस आपत्ति को कैसे बताऊं ?

गाना

दिल की हालत का बयां करना बहुत दुशवार है।
शोक ने घेरा है, मुझपर संकटों का भार है।।
हाय अब सन्तोष सारा हो गया दिल से विदा।
आज इन्द्रासन जो मेरा डोलता हर बार है।।
किस तरह अपमान का जीवन बिताऊंगा भला।
मान मर्यादा गई तो जिन्दगी बेकार है।।
कर सको जो कुछ करो मेरे लिये दरबारियो।
आज देवन के महाराजा पै भारी भार है।।

मन्त्री जी : इन्द्रासन का डोल जाना मुझे आराम से नहीं बैठने देता; हृदय के विचार आपस में लड़ रहे हैं, आंखों के आगे मानों अंगार झड़ रहे हैं।

मन्त्री—निस्सन्देह, महाराज ! इन्द्रासन का डोल जाना साधारण बात नहीं।

इन्द्र—आह ! भाग्य का चक्कर ! दिनों का फेर !

गाना (तर्ज-तेरी करनी कुटिल …)

टेक—समय अब खोटा आया है-जो यह अशगुन दिखाया है।

दोहा—धीरज अब मन को नहीं, चित्त हुआ बेचैन।।
व्यापी हृदय में अगन, जल भर आया नैन।
महा व्याकुल बनाया है-जो यह अशगुन दिखाया है।।

दोहा—हिम पर्वत की गुफा में, देख स्वच्छ स्थान।
मृत्यु लोक में महर्षि, नारद बैठे आन।
हरि में मन लगाया है-जो यह अशगुन दिखाया है।।

दोहा—जप तप पूरा हो यदि, निश्चय है यह बात।
इन्द्रासन पर ऋषि का, होगा तब आघात।।
सितारा मन्द आया है-जो यह अशगुन दिखाया है।

दोहा—कामदेव; परियो मेरी ? आओ अब कुछ काम।।
'कुशल' रहे इस राज में मिले तभी आराम।
मुझे चिन्ता ने खाया है-जो यह अशगुन दिखाया है।।
अप्सराओ ! तुम रूप की खान और मनुष्य का मन लुभाने में सुजान हो। बस इसी समय हिमगिरि पर चलो जाओ और जिस प्रकार भी हो सके नारद का मन डिगाओ :—
मिटा दूंगा सदा के वास्ते चिन्तायें सब मन की।
कमी तुमको रहेगी फिर न सुख सम्पत के साधन की।।

अप्सराएं—जैसी आज्ञा प्रभु ! (प्रणाम करके जाना)

इन्द्र—(कामदेव से) कामदेव! तुम्हारा पराक्रम तो संसार में विख्यात है। बड़े-बड़े देवताओं का मन लुभा देना तुम्हारे लिये साधारण सी बात है। इस समय तुम भी मेरी सहायता करो और हिमगिरि पर जाकर अपनी माया रचो।

कामदेव—जैसी आज्ञा महाराज।

[कामदेव का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(हिमालय की गुफा)

[नारद मुनि समाधि लगाए बैठे हैं, अप्सराएं और कामदेव आते हैं]

गाना (तर्ज-गुल्दो पै ज़ ़ं)

अप्सराएं—कैसा निसार है, कैसा बलिहा है मन-मन।
आई जीवन गुलजार में बहार की रुत प्यारी प्यारी।।

अप्सरा १—आंख मस्तानी दिखाकर करूं दिल को बीमार।
तीर नैनों के चलाकर करूं हर जान के पार।।

अप्सरा २—जाल जुल्फों का बिछाऊं तो कुशल हो क्या करें ?
चाल मस्तानी दिखाऊं तो पिघल जाय जिगर।।
नैनों के तीर हैं, गेसू जंजीर हैं;
आना इधर दिल थाम के भरतार रे, सरकार रे.........
कैसा निसार है.........

अप्सरा—ओहो ! यह मुनि तो बड़ा कठोर है। आंखें भी नहीं खोलता; मुख से भी नहीं बोलता। (जाना)

कामदेव—सुरपति इन्द्र की आज्ञानुसार स्वर्ग की अप्सराएं भी अपना अपना पराक्रम दिखा चुकीं परन्तु नारद की समाधि न छुड़ा सकीं। अब मैं भी अपनी शक्ति का आजमाता हूं और युक्ति की कमान पर काम का वाण चढ़ाता हूं:—

कराता हूं इसे अब स्वर्ग के आराम का दर्शन।
हिमालय को गुफा में देवपुर के धाम का दर्शन।।
दिखाता हूं अभी करके इसे सारा जहां अच्छा।
पवन अच्छी, शगुन अच्छा, ऋतु अच्छी, समां अच्छा।।

[कामदेव का अपनी माया से बसन्त ऋतु को लाना और काम-रूपी वाण छोड़ना]

गाना (तर्ज—काया का पिंजरा डोले रे)

संसार काम की माया रे, क्यों मूरख जनम गंवाया।
जो योगी योग कमाते, वन में जा ध्यान लगाते।
वे भी इसमें भरमाते रे, जब काम आनकर छाया।।
संसार.......

जब पवन चले मतवारी-महके हर फूल फूलारी।
देखी जा महिमा न्यारी रे, सब ज्ञान-ध्यान बिसराया ॥
संसार………

ज्ञानी, ध्यानी, ब्रह्मचारी-सब शूरवीर, बलकारी।
माया के मेरी पुजारी रे, क्यों 'कुशल' फिरे भरमाया ॥
संसार………

[अनेक प्रकार के आडम्बर रचाना पर नारद की समाधि भंग न होना]

कामदेव—(लज्जित होकर) अफसोस ! आज स्वर्ग की अप्सराओं का यौवन और कामदेव का मन्त्र भी नारद मुनि के तप को खंडित न कर सका। देवराज इन्द्र का बड़े से बड़ा प्रयत्न भी इसे ज्ञान-ध्यान से विचलित न कर सका। आह ! एक तो सुरपति की रक्षा का भार उठाया और फिर अपनी शक्ति को निस्तेज बनाया। निस्सन्देह मैंने बहुत बुरा किया जो नारद जसे महर्षि के सामने चला आया, एक सच्चे योगेश्वर को ध्यान से विचलित करने का बीड़ा उठाया। अब यदि ऋषिराज कोप कर जायेंगे तो जन्म जन्मान्तरों के बदले उतर जाएगे।

(नारद के चरणों में गिरकर) क्षमा ! ब्रह्मर्षि क्षमा ! यह अभिमानी कामदेव अपनी शक्ति पर फूला फिरता था, अहकारवश आपका पराक्रम भूला फिरता था :—

न समझा मोह में अपने, निरादार किसका होता है।
मेरा अभिमान मेरे रास्ते में शूल बोता है ॥
हुआ है आज तक दुनिया में सिर अभिमान का नीचा।
दिखाना पड़ता है जीवन सदा अपमान का नीचा ॥

नारद—(समाधि से जागकर) कामदेव ! कहो क्या बात है ? किस

अपराध की क्षमा मांग रहे हो ? तुम्हें किस दोष ने अपमानित किया है ?

कामदेव—भगवन ! आपकी घोर तपस्या देखकर सुरपति इन्द्र भयभीत हो गया और इन्द्रासन जाने का शोक अजीत हो गया। तब देवराज ने रम्भा आदि अप्सराओं को मेरे सहित आज्ञा दी कि यदि नारद की समाधि में विघ्न आए तो मेरा व्याकुल मन चैन पाए। हे नाथ ! स्वामी का आज्ञा पाकर अप्सराओं सहित हिमगिरि पर आया और हर प्रकार से अपनी शक्ति को आजमाया, परन्तु आपको अपने ध्यान में अटल पाया। हे नाथ ! सेवक से यह अपराध हुआ है; क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये :—

किया अभिमान जो मैंने यह फल उसका ही पाया है।
क्षमा कीजे प्रभो अब शीश चरणों में झुकाया है ॥

नारद—हे काम ! ऋषि लोग क्रोध नहीं किया करते, और सांसारिक पदार्थों पर मन नहीं दिया करते। तुमने जो कुछ किया इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं ? मैं जानता हूं कि इन्द्र को अपने इन्द्रासन का बड़ा मोह है। वह त्यागी पुरुषों पर भी सन्देह कर बैठता है परन्तु हम उस पर भी क्रोधित नहीं हैं तुम निर्भय होकर जाओ और इन्द्र के मन को शान्ति दो।

ध्यान हम करते नहीं है सम्पदा के वास्ते।
है नहीं जीवन हमारा लालसा के वास्ते ॥
छोड़ दी अभिलाषा सारी त्याग माया का किया।
मोह से मुंह मोड़ कर जंगल में डेरा आ किया ॥

कामदेव—धन्य है महाराज ! (नमस्कार करके जाना)

नारद—(स्वयं, अभिमान में आकर) कामदेव, अभिमानी कामदेव, नाशवान कामना का दास; इन्द्र के द्वार पर पड़ा रहने वाला

भिखारी, और महर्षि नारद से युद्ध की तैयारी। एक बार तो शिवजी महाराज के सामने जाकर हार पाई और फिर मेरे सम्मुख आते हुए शर्म ना आई। एक तो भगवान के चरणों का ध्यान, दूसरे नारद का ज्ञान और उस पर कामदेव का यह अभिमान। स्वार्थी कामदेव! तू मुझे भी कोई सासारिक मनुष्य जानता है जो इस प्रकार अपमानित करने की ठानता है। यह नहीं समझता कि ईश्वर के प्रेमी बाधाओं से कब डरते हैं; जब आपत्तियां आती हैं तो और भी आगे बढ़ते हैं।

जो व्यापे चांद से अग्नि झड़ें अंगार बादल से।
महि पर आ गिरे सूरज चाहे आकाश मंडल से॥
बलाओं की भी हो वर्षा तो अपने सिर पे लेते हैं।
जो प्रेमी हैं वे सच्चे प्रेम पर ही प्राण देते हैं॥

कामदेव ने समझा होगा कि मैं अपने बल से नारद को आधीन कर लूंगा; किन्तु यहां आकर बेचारे ने अपना ही कुछ बिगाड़ा, लो देखलो आज मैंने उसे बुरी तरह पछाड़ा। अब मैं शिवजी महाराज के पास जाता हूं और अपनी विजय का समाचार सुनाता हूं, बोलो महर्षि नारद की जय!

[नारद का जाना; परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(कैलाश पर्वत)

[शिवजी महाराज गणों सहित बैठे हैं। नारद मुनि आते हैं।]

नारद—महादेव जी, नमस्कार!

शिवजी—नमस्कार नारद जी! आइये पधारिये, कुशल तो है! आज इधर कैसे भ्रमण हो गया?

नारद—एक बड़ा शुभ समाचार लाया हूं महाराज ! आप को सुन कर बड़ा आनन्द होगा ।

शिवजी—कहिये, कहिये ! ऐसा क्या समाचार है ? नारद जी ! शीघ्र ही कहिए ।

नारद—अजी ! वह है न आपका पुराना शत्रु कामदेव, जिसने एक बार आपके सामने आकर भी अपनी माया रचाई थी और आपके द्वारा पूर्ण हार पाई थी ।

शिवजी—हां-हां कहो-कहो ! क्या उसने कोई और नया उत्पात कर डाला है ?

नारद—हां ! करना चाहता था; परन्तु हम भी अपने नाम के नारद हैं । हमने उसे हरा कर ही छोड़ा और अच्छी तरह उसका अभिमान तोड़ा । क्या आपको यह जानकर प्रसन्नता नहीं ?

शिवजी—है क्यों नहीं ? बड़ा ही शुभ समाचार है, परन्तु यह कैसे हुआ नारद जी ?

नारद—भगवान ! मैं विचरता-विचरता हिमालय के निकट जा, पहुंचा, वहां एक कन्दरा का सुन्दर दृश्य और एकान्त स्थान देखकर समाधि लगा कर बैठ गया । भजन में ऐसा लीलीन हुआ कि लोक और परलोक की कुछ खबर न रही । इन्द्र ने जैसा कि आप जानते हैं अपने इन्द्रासन के भय से कामदेव और रम्भा आदि अप्सराओं को मेरा तप खण्डित करने के लिए भेजा । उन सब ने मिलकर अत्यन्त जोर लगाया; परन्तु मेरी समाधि में जरा भी विघ्न न आया । कामदेव घबराया और अनेक प्रकार से विनती करके अपना अपराध क्षमा कराया । अब कहिये कि संसार में ऐसा कौन है जो कामदेव को जीत सकता हो ? क्या मैंने साधारण कार्य किया है ?

अब मेरा साहस जगत में किससे देखा जायगा।
जो सुनेगा जीत मेरी वह ही शरमा जायगा।।

शिवजी—निस्सन्देह नारद जी ! आपके पराक्रम को कौन पा सकता है ? ऐसे तेज के सामने कौन आंखें उठा सकता है ? परन्तु मैं आपके हित के लिये एक प्रार्थना करता हूं कि जिस प्रकार यह समाचार आपने मुझको सुनाया, कहीं विष्णु भगवान से न कह बैठना।

नारद—भगवान देखा जायगा। (स्वयं) अच्छी रही; न कहने की एक ही कही। काम करे और यश न फैलाए; वीर हो और नाम न पाए। अजी, इनकी बातों में कौन पड़े ? कहूंगा, अपनी वीरता का वृत्तान्त पिता जी और विष्णु भगवान से भी अवश्य कहूंगा :—

दिखाऊंगा उन्हें यश किस तरह योगी कमाते हैं।
वही बस यश के भागी हैं जो कुछ करके दिखाते हैं।।

[प्रस्थान]

शिवजी—प्रतीत होता है कि महर्षि नारद के मन में अभिमान उत्पन्न हो गया है। अब ये अपनी जीत का समाचार विष्णु भगवान से कहे बिना न मानेंगे। हे गणो ! तुम नारद जी के पीछे २ चले जाओ और जो कुछ देखो हमें आकर सुनाओ।।

गण—जैसी आज्ञा प्रभु।

[दो गणों का नारद के पीछे जाना]

[परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

[ब्रह्म लोक में ब्रह्मा जी अपने आसन पर विराजमान हैं नारद जी आते हैं]

नारद—पिता जी के चरणों में प्रणाम।

ब्रह्मा जी—अहा ! नारद जी ! आइये, पधारिये। कुशल तो है। आज कैसे आगमन हुआ ?

नारद—महाराज, आज तो भाग्य की रेखा बड़ी ही अनुकूल आई है। आपके आशीर्वाद से मैंने एक महान संग्राम में विजय पाई है।

ब्रह्मा जी—आह ! बड़ा आनन्द दायक संवाद है। कहिये, कहिये, क्या समाचार है ?

नारद—महाराज पहले मुझे आशीर्वाद दीजिये और फिर मेरा वृत्तान्त सुन लीजिये।

ब्रह्मा जी—हां-हां कहो, क्या सन्देश लाए हो ?

नारद—अजी वह है न इन्द्र का दास कामदेव, जिसने सारे संसार को नाच नचा रखा है, प्रत्येक को अपना दास बना रखा है। आज उसी की अशुभ घड़ी आई और उसने मेरे द्वारा भारी हार पाई।

ब्रह्मा जी—यह कैसे हुआ नारद जी ?

नारद—महाराज मैं हिमालय पर्वत पर समाधि लगाए बैठा था कि इन्द्र के भेजे हुए कामदेव और कई अप्सराएं आई और उन्होंने मेरा तप खण्डित करने के लिए अनेक लीलाए रचाई। परन्तु अपनी शक्ति को निस्तेज पाया और अन्त में क्षमा मांग कर ही अपना पीछा छुड़ाया। इस प्रकार मैंने कामदेव को जीत लिया और अवश्य जीत लिया। हा ! हा ! हा ! (हंसना)

ब्रह्मा जी—बात तो बड़े आनन्द की है नारद जी ! निस्सन्देह आपने बड़ा पराक्रम दिखलाया है जो ऐसे अभिमानी को नीचा दिखाया है परन्तु एक बात मेरी भी ध्यान में रखना कि यह

वृत्तान्त विष्णु भगवान को न सुनाना। आप का हित इसी मे है।

नारद—(एक ओर) वाह !

काम करके फिर न फैलाएं उसे ससार में।
और होंगे ऐमे मूरख विश्व के विस्तार में।।
जीत का अपनी सुनाऊंगा उन्हें एक एक हाल।
वे दयालु हैं सदा रहते हैं भक्तों पर दयाल।।

[नारद का प्रस्थान, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(क्षीर सागर)

[विष्णु भगवान शेष-शय्या पर लेटे हैं, लक्ष्मी चरण दवा रही हैं। नारद जी आते हैं]

विष्णु—(खड़े होकर) अहा योगेश्वर नारद जी ! अब की बार तो बहुत दिनों मे कृपा की। कहिये चित्त तो प्रसन्न है ? मृत्यु लोक में क्या हो रहा है ?

नारद—महाराज हिमगिरी पर एक बड़ी ही विचित्र लीला देखने में आई !

विष्णु—क्या देखा नारद जी !

नारद—वन की शोभा और एकान्त स्थान देखकर चित्त प्रफुल्लित हो उठा और मैं आप के चरणों के ध्यान में मन लगाकर बैठ गया।

विष्णु—फिर ?

नारद—वही है ना लालसा का दास इन्द्र ! जिसको हर समय इन्द्रासन की चिन्ता व्याकुल किये रहती है। हमारे ज्ञान-ध्यान से

भयभीत होकर विचारने लगा कि कहीं नारद योगबल से मेरा इन्द्रासन न छीन ले।

विष्णु—यह इन्द्रदेव की भूल है।

नारद—यही तो मेरा भी तात्पर्य है प्रभो। इसी भय के कारण उसने मेरी समाधि को खण्डित करने के लिये अनेक प्रयत्न किये; इन्द्रलोक की अप्सराओं और कामदेव को हिमगिरि पर भेजा। उन्होंने भांति-भांति के जाल फैलाये; नाच किये और गायन गाए।

विष्णु—और तुम अपने ध्यान में लीलीन ही रहे ?

नारद—और नहीं तो क्या उनके नाशवान आनन्द पर फूल जाता; मोह में पड़कर आपके चरणों को भूल जाता।

विष्णु—हां ठीक है। यह तो स्वाभाविक ही है। अच्छा फिर क्या हुआ ?

नारद—जब उन्होंने मुझे अपनी तपस्या में पूर्ण पाया तो आधीनता के साथ मेरे सामने सिर झुकाया। मैंने भी जैसा कि आपके भक्तों का स्वभाव होता है उन्हें क्षमा करके इन्द्रलोक जाने की आज्ञा दे दी।

विष्णु—यह आपने बहुत अच्छा किया नारद जी !

नारद—परन्तु महाराज, मैंने कामदेव को अपने आधीन करके छोड़ा। जो बड़े-बड़े योगेश्वरों और देवताओं के वश में नहीं आता था। आज उसका अच्छी तरह अभिमान तोड़ा। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है ?

विष्णु—हां, अवश्य है, परन्तु नारद जी, आपके लिये नहीं ! क्योंकि जहां ज्ञान और वैराग्य बसते हैं वहां ऐसे विकार कैसे ठहर

सकते हैं ? एक कामदेव क्या यदि हजारों कामदेव भी आएं तो भी आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते ; सारे संसार के पाखंड मिलकर भी अकेले ब्रह्मचर्य व्रत को नहीं पछाड़ सकते ।

सदा हृदय में जिनके धर्म की मर्यादा बसती है ।
उन्हें सत से गिरादे यह भला फिर किस की शक्ति है।।

नारद—यह तो ठीक है महाराज ! किन्तु अब लोक और परलोक में मेरा पराक्रम फैले बिना न रहेगा। बोलो सन्त सनातन की जय !

[नारद का गाते हुए प्रस्थान]

विष्णु—विचार शक्ति से ज्ञात हुआ कि नारद जी के हृदय पर कुछ अभिमान का प्रभाव पड़ गया है; वैराग्य और ज्ञान के दर्पण पर अहंकार का मैल चढ गया है; सोई मैं इसे अवश्य दूर करूंगा। नारद जी हमारे परमभक्त हैं और भक्त की रक्षा करना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है ।

न हो कर्त्तव्य यह मेरा तो मैं अशरण शरण कैसा ।
बचाऊं जो न भक्तों को तो फिर मेरा परण कैसा ।।

[ताली बजाना-योग माया का प्रकट होना]

माया—नाथ ! क्या आज्ञा है ?

विष्णु—हमें अपने भक्त के हित के लिये कुछ कार्य करना है। इस लिये तुम मृत्यु लोक में जाकर एक सुन्दर नगर बसाओ और शीलनिधि को वहां का राजा बनाओ। (लक्ष्मी से) लक्ष्मीजी! तुम अभी जाकर शीलनिधि की विश्वमोहिनी कन्या बन जाओ ।

[दोनों का प्रणाम करके जाना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(शीलनिधि का दरबार)

शीलनिधि—मन्त्री जी ! अब कन्या युवती हो गई है, इसके लिए वर की खोज होनी चाहिए।

मन्त्री—हां महाराज ! मेरा भी ऐसा ही विचार है।

[नारद का प्रवेश]

शीलनिधि—(खड़े होकर) मुनिवर प्रणाम ; आइए, पधारिये। आपने दर्शन देकर बड़ी कृपा की।

नारद—आनन्द रहो राजन ! राज्य में कुशल हो ।

शीलनिधि—महाराज मेरी कन्या विश्वमोहिनी विवाह योग्य हो गई है, कृपा करक बतलाइये कि इसे कैसा वर मिलेगा।

नारद—अच्छा राजन् ! कन्या को बुलवाइये और मुझे उसका हाथ दिखलाइए।

शीलनिधि—जैसे आज्ञा महाराज ! द्वारपाल तुम अभी जाकर विश्व-मोहिनी को बुला लाओ।

[द्वारपाल का जाना और विश्वमोहिनी सहित आना]

विश्वमोहिनी—(हाथ जोड़कर) मुनिराज प्रणाम !

नारद—जीवित रहो, सौभाग्यवती हो; लाओ हमें अपना हाथ दिखलाओ।

[नारद जी का हाथ देखकर विचार करना]

(स्वयं) ओहो, हस्त रेखा बताती है कि कन्या साक्षात लक्ष्मी है। यह निस्सन्देह स्वर्ग को स्वामिनी बनेगी (प्रकट) राजन् ! तुम्हारी कन्या बड़ी भाग्यशाली है। तुम इसका स्वयंवर

रचाओ और देश-देशान्तर के राजाओं को बुलाओ; इसको निस्सन्देह बड़ा श्रेष्ठ वर मिलेगा।

शीलनिधि—जैसी आज्ञा मुनिवर!

[नारद का जाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(परदा जंगल)

नारद—(स्वयं) कन्या के लक्षण देखने से प्रतीत हुआ कि वह बड़ी भाग्यशाली है। जिस वर से उसका संस्कार होगा वह अमर पद को पायेगा; विश्व में तेजस्वी और पराक्रमी कहलायेगा। निस्सन्देह यदि वह कन्या मुझे मिल जाय तो मेरा भाग्य उदय हो जाय, परन्तु उसको पाने का कोई उपाय समझ में नहीं आता। क्या करूं? किससे कहूं? रूप ऐसा सुन्दर हो कि कन्या देखते ही रीझ जाए और जयमाल का सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हो (सोच कर) हां, याद आया। एक काम करूं, विष्णु भगवान के पास चलूं और हरि का रूप मांग लाऊं (फिर सोच कर) परन्तु जाने-आने में विलम्ब होगा और कार्य की पूर्ति में विघ्न पड़ेगा। भगवान तो सर्वव्यापी हैं, ध्यान द्वारा यहीं याद करूं तो स्वयं प्रकट हो जाएंगे (हाथ जोड़ कर) हे कृपालु भगवान! हे कृपा सिन्धु जगदीश! हे दीनों की रक्षा करने वाले स्वामी! मेरी रक्षा करो; मेरे मन की इच्छा को पूरी करो। मैं आपको नमस्कार करता हूं, मुझे केवल आपका ही सहारा है।

मिटाओगे तुम्हीं यह रोग अब इसकी दवा बन कर।
हरोगे शोक को मेरे तुम्हीं अब आसरा बनकर॥

कोई संसार में निर्बल-उबारन हो नहीं सकता।
मेरा संकट तुम्हारे बिन निवारण हो नहीं सकता॥

गाना

मिटाओ नाथ अब संकट मिटाओ।
दया सागर दया अपनी दिखाओ॥
तुम्हीं निराश्रय के आश्रय हो।
तुम्हीं बस डूबते को आ बचाओ॥
निराशा भक्त का भी हो चली है॥
करो मत देर अब धीरज बचाओ॥
समय अब शयन करने का नहीं है।
'कुशल' है तब ही जब दर्शन दिखाओ॥

[पटाखे की आवाज पर प्लाट का फटना, भगवान का दर्शन]

विष्णु भगवान—नारद जी ! ऐसी शीघ्रता से याद करने का कारण ?

नारद—भगवान ! आपके पास से चलकर भ्रमण करता हुआ निकला तो मार्ग में एक विशाल नगर पड़ा। वहां के राजा की कन्या के शुभ विवाह का समाचार पाकर यह दास भी चला गया। हे प्रभु ! उस कन्या के लक्षण देखकर आपके भक्त के मन में विवाह करने की अभिलाषा उत्पन्न हो गई। सोई महाराज, मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिए और कुछ समय के लिए हरि का रूप दे दीजिए।

विष्णु भगवान—नारद जी, मुझे हर समय तुम्हारा हित प्यारा है। मैं हर घड़ी तुम्हारे भले की सोचता रहता हूं। जिस प्रकार वैद्य रोगी को उसके रोग के विरुद्ध मांगने पर भी मीठी दवा नहीं देता उसी प्रकार मैंने तुम्हारा विचारा है। मैं तुम्हारा अनहित कदापि न होने दूंगा।

मुझे खुद अपने प्यारे की है प्यारे से अधिक चिंता।
तुम्हारी मनमें रहती है तुम्हारे से अधिक चिंता।।
मैं सब कुछ जानता हूं क्या करूंगा और क्या होगा।
मगर होगा वही जिसमें तुम्हारा ही भला होगा।।

[बानर का रूप देकर अन्तर्धान हो जाना]

नारद—(प्रसन्न होकर) लो भगवान भी आ गये और सकट भी मिट गया। अब स्वयंवर में जाकर, हरि का रूप दिखाकर, कन्या को मोहित करूंगा और जिस प्रकार होगा उसे वरूंगा।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य नौवां

(विश्वमोहिनी का स्वयंवर)

[अनेक राजाओं का बैठे हुए दिखाई देना, विश्वमोहिनी का जयमाल लेकर सबके बीच में घूमना, नारद का उसको बार-बार अपना रूप दिखाना किन्तु कन्या का घबराना। अन्त में विष्णु भगवान का आना, विश्वमोहिनी का उन्हें जयमाल पहनाना, दोनों का जाना और शिवजी के गणों का नारद की हंसी उड़ाना।]

गाना

गण—

टेक—क्यों रे नारद नादान, क्यों रे नारद नादान !
छाया है तुझको कैसा अभिमान ? क्यों रे···

अन्तरा—(१) जप-तप छोड़ वनों से आया ज्ञान ध्यान बिसराया।
त्यागी होकर फंसा मोह में, माया में भरमाया।।
क्यों रे······

(२) दुनियां में प्रसिद्ध हुआ जिस कामदेव का स्वामी।
इक क्षण में ही फिर बन बैठा दास उसी का कामी ॥
क्यों रे······

(३) दुनियां के आनन्द में मूरख मन तेरा ललचाया।
कुशल छोड़कर साधु-सन्त की दुष्टाचार बनाया ॥
क्यों रे······

[अंगूठा दिखाकर चिढ़ाना, नारद का क्रोध आना]

नारद—दुष्टों ! तुम दोनों महापापी हो, अधर्मी हो। तुमने हमारी हंसी उड़ाई है, लो अब इसका दण्ड भी पाओ और मृत्युलोक में जाकर राक्षस हो जाओ।

सदा भोगोगे डूबा पाप के आकार में जीवन।
उठाएगा महा अपकीर्ति संसार में जीवन ॥
यही है बस तुम्हारे वास्ते अभिमान का बदला।
मिलेगा हर घड़ी अपमान से अपमान का बदला ॥

गण—क्षमा ! महाराज क्षमा ! हम शिवजी महाराज के गण हैं। आप के मुख की अनोखी आकृति को देखकर हमें हंसी आ गई थी। हमारा अपराध क्षमा कर दीजिए; ऐसा कठोर शाप न दीजिए।

नारद—नहीं ! हमारा शाप मिथ्या नहीं हो सकता। तुम राक्षस तो अवश्य बनोगे परन्तु जब विष्णु भगवान राम अवतार लेंगे तो तुम्हारा उद्धार होगा। जाओ।

[गणों का जाना, नारद जी का जल में अपना मुंह देखकर क्रोधित होना।]

नारद—छल, कपट, धोखा ! याचना का बदला अपमान से ! विश्वासघाती का काम और विष्णु भगवान से ! नहीं-नहीं अब

उसकी बुद्धि मलीन हो गई है; उसका हृदय पाखंड से भर गया है। रूप मांगा हरि का और दे दिया बानर का ! यही है उदारता ! यही है न्याय ! भरी सभा में मेरा अपमान कराया, सदा के लिए मुझे स्वार्थी ठहराया :—

मुनासिब था यही तुझको श्री भगवान कहलाकर।
यही गुण हमको दिखलाया बड़ा गुणवान कहलाकर॥
मेरे तो वास्ते जग में निराशा ही निराशा है।
परन्तु देखले तू भी कपट का क्या तमाशा है॥

[क्रोध में भरे हुए बड़े वेग के साथ जाना, परदा गिरना]

दृश्य दसवां

(परदा जंगल)

[विष्णु भगवान और विश्वमोहिनी जा रहे हैं, पीछे से नारद जी आते हैं।]

नारद—ठहर ! दूसरों की आशाओं पर पानी फेर कर अपनी कीर्ति को बढ़ाने वाले ठहर ! भक्त के साथ द्रोही का काम करके दीनरक्षक और भक्तवत्सल कहलाने वाले ठहर !

तुझको अब तक न मिला राह पै लाने वाला।
तेरी गम्भीरता में प्रश्न उठाने वाला॥
भक्त का आपने किया खूब ही आदर तूने।
लोक में करके यह नारद का निरादर तूने॥

विष्णु—मुनिराज क्या आज्ञा है ?

नारद—आज्ञा ! आज्ञा तो तुम्हारी है। जो मन में आता है सो करते हो। न किसी का सम्मान है न किसी से डरते हो। मैं जानता हूं कि तुम सर्वव्यापी हो, परन्तु उतने ही पापी हो। मैंने बड़ा

भूल की जो तुम्हारे पास याचना करने चला आया ; नहीं तो तुम वही हो कि सागर-मंथन के समय महादेव जी को विष पिलाया ; मोहिनी रूप धार कर भस्मासुर का नाश कराया :—

भला ऐसे से खाये कोई मूरख लाभ का धोखा ।
घुसा हो जिसकी नस-नस में कपट, छल सर्वदा धोखा ॥
जो यह आदत तुम्हारी है कहां विश्राम है मेरा ।
न बदला लूं बदो का तो न नारद नाम है मेरा ॥

विष्णु—शान्त, मुनिवर शान्त !

नारद—शान्त होने का बहुत काम किया है जो मुझे शान्त करते हो। नहीं, शान्त नहीं हो सकता, दूंगा, तुम्हें अवश्य शाप दूंगा। लो सुनो ! जिस प्रकार तुमने मुझे स्त्री के विरह में तड़पाया है उसी प्रकार तुम भी पत्नी के वियोग में महादुःख पाओगे और जिस बानर के रूप को घृणा की दृष्टि से देखकर मुझे दिया है उसी बानर रूप से सहायता चाहोगे :—

फिरोगे ठोकरें खाते महा दुस्तर पहाड़ों में ।
कहीं पर्वत, कहीं जंगल कहीं वन और उजाड़ों में ॥
निराशाओं के बादल हर तरफ घिर-घिरके छायेंगे ।
यदि कुछ काम आएंगे तो ये बानर ही आयेंगे ॥

विष्णु—नारद जी, मैं आपके शाप को स्वीकार करता हूं :—

न मुझको काम सुख-दुःख से न शोक आनन्द साधन से ।
मुझे उस में ही आनन्द है जिसे तुम चाहते मन से ॥

गाना

उपकार में तुम्हारे उपकार जानता हूं ।
भक्तों को जिंदगी का मैं तार जानता हूं ।
इच्छा है जो तुम्हारी राजी हूं मैं उसी में ।
आज्ञा में प्रेमियों की उद्धार जानता हूं ॥

यह शाप अब तुम्हारा सिर पर मेरे रहेगा।
पालन में मैं इसी के निस्तार जानता हूं॥
मिथ्या न हो सकेंगे नारद वचन तुम्हारे॥
लेना पड़ेगा मुझको अवतार जानता हूं॥

अच्छा नारद जी, अब सावधान हो जाओ। मोह को दूर करो और विवेक तथा वैराग्य-ज्ञान को जगाओ।

[भगवान की कृपा से नारद का क्रोध शांत होना]

नारद—(चौंककर) हैं! यह क्या! मैंने क्या किया! मेरे मन में ऐसे विकार क्यों उत्पन्न हुए! मेरे हृदय में क्रोध की अग्नि क्यों भड़क उठी? (सोच कर) भगवान, मैं भूला, मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मुझे क्षमा कीजिए, मेरा शाप निष्फल कर दीजिये :—

न समझा हर जगह व्यापक तुम्हारी ही तो माया है।
तुम्हारा रूप ही सृष्टि के कण कण में समाया है॥
मेरा मन घोर पापी है जो यों अभिमान में आया।
किया जो कुछ विचारा कह गया जो ध्यान में आया॥

विष्णु—नारद जी! तुम कोई चिन्ता न करो। जो कुछ हुआ है मेरी ही इच्छा से हुआ है :—

[दोनों का सम्मिलित गाना]

ना०—जय, जय, जय, दीन दयाल प्रभु!
वि०—जय, जय, जय, सन्त सनातन की।
ना०—जय, जय, जय, नारद जगत-गुरु,
वि०—जय, जय, जय, दीन उबारन की।
ना०—जय जय करुणाकर नाथ हरि, जय जय करुणा सागर स्वामी।
जय जय भय भंजन शोक हरण, जय जय भगवन अन्तर्यामी॥

वि०—जय जय ऋषियों के आदि-गुरु, जय जय पावन संतन स्वामी।
जय जय मद लोभ-विनाशक मुनि,जय जय नारद सुरपुर गामी॥

ना०—जय, जय, जय, दीन. दयाल प्रभु।

वि०—जय, जय, जय, सन्त सनातन की।……

ना०—महाराज यह मैंने मोह के वश, तुम पर जो दोष लगाया है।
यह पाप क्षमा कर दो भगवन, चरणों में शीश नवाया है॥

वि०—तुम क्यों संकोच करो नारद, यह सब मेरी ही माया है।
जाकर शंकर का जाप करो,क्यों कुशल ध्यान बिसराया है॥

ना०—जय, जय, जय, दीन दयाल प्रभु।

वि०—जय, जय, जय, सन्त सनातन की।

[धीरे-धीरे ड्राप गिरना और आरती पर लीला समाप्ति]

द्वितीय अंक

दृश्य पहला

(परदा जंगल)

[कुशध्वज ऋषि की कन्या वेदवती वैरागिनी वेश में विष्णु भगवान की पात-भक्ति करते और लकड़ियां चुनते दिखाई दे रही है।]

गाना

वेदवती—

समाया हर समय नजरों में वह भगवान रहता है।
उसी की है लगन मन में उसी का ध्यान रहता है।।
बनूं मैं चेरी चरणों की यही आशा यही इच्छा।
मरण हो उसके चरणों में यही अरमान रहता है।।
जुदाई हर घड़ी की अब मुझे बेचैन रखती है।
विरह में रात दिन हो मौत का सामान रहता है।।
दया कर अब तो हे भगवान! आखिर सब्र की हद है।
कुशल अब क्या रही दिल हर घड़ी हैरान रहता है।।

अहा! जब से मेरे पिता कुशध्वज ऋषि ने प्रण किया है कि मेरे पति विष्णु भगवान होंगे तब से मैं भी उन्हीं के ध्यान में जीवन बिता रही हूं। सारे संसार से मुंह मोड़कर उन्हीं के चरणों में लौ लगा रही हूं; परन्तु प्यारे ने अब तक कृपा नहीं की! निराशा के अन्धकार में आशा की ज्योति नहीं डाली—

कौन जाने कब तलक स्वामी मिलेंगे आन कर,
और निज सेवा में लेंगे जानकर पहचान कर।
कब तलक यूंही फिरूंगी ठोकरें खाती हुई,
शोक और सन्ताप में जीवन को भरमाती हुई।।

[रावण का प्रवेश]

रावण—(वेदवती को देखकर) अहा !

निर्जन वन में शोभतो ऐसे सुन्दर नार।
जैसे मोती कीच में चमकत है हर बार।।

नहीं, नहीं यह तो इससे भी अधिक सुन्दर है—

इस निर्जन स्थान में क्यों कामनि का वास !
ज्यों अन्धियारी रैन में चन्द्रदेव का हास।।

वेदवती—क्या विचार रहे हो महात्मन् ?

रावण—(अपने ध्यान में) सुन्दर मुख, विशाल नेत्र, घुंघराले बाल, चौड़ी छाती, मस्तानी चाल और मन को लुभाने वाला अलौकिक रूप, बड़ी ढिठाई के साथ चित्त पर प्रभाव डाल रहा है। इतने आकर्षण एक साथ मिलकर दिल चुराने की चेष्टा कर रहे हैं। निस्सन्देह यदि शारीरिक और मानसिक बल पर विजय पाने वाली कोई शक्ति है तो केवल चन्द्र-मुख की शोभा ! यदि ज्ञानी का ज्ञान, योगी का ध्यान और मानी का मान तोड़ने वाला कोई वीर है तो केवल यह रूप—

जहां चल जाएं तीखे वार इन नैनों के तीरों के।
नहीं कुछ काम दे सकते वहां हथियार वीरों के।।
नजर कैसे न हो संसार की इस देव बाला पर।
निछावर चन्द्र, तारागण हैं जब इस मुख की शोभा पर।।

वेदवती – ज्ञानी पुरुष ! विचारों की उलझन को छोड़िये और अपना तात्पर्य प्रकट कीजिये ।

रावण—ओहो ! भूल गया, बड़ी चूक हुई ! हां देवी, तुम कौन हो ?

वेदवती—मैं ? कुशध्वज ऋषि की कन्या, मार्ग मे भटकी हुई अनाथ बालिका, संसार की बिसराई हुई दीन जोगिन ।

रावण—क्या अभी तक तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं हुआ ?

वेदवती—हो चुका—

सदा से आज तक जिसका कि सब वेदों ने गुण गाया ।
जो विष्णु विश्व का और लोक का आधार कहलाया ।।
जिसे चौदह भुवन और तीन युग भगवान कहते हैं ।
उसी को बस मेरा जीवन, मेरा पतिप्राण कहते हैं ।।

रावण—कल्पना ! झूठी कल्पना ! मृगतृष्णा के पीछे दौड़ने वाली मृगी ! क्या धूप को मुट्ठी में बन्द करने का इरादा कर रही है ? भोली बाला ! क्या उस कल्पित आकार को प्रेम करके आशाओं का स्वप्न देख रही है :—

यह कसौटी होगी पूरी किस तरह विश्वास की ।
आस है कागज के फूलों से तुझे सुवास की ।।
तुझको तड़पाती रहेगी सर्वदा आशा तेरी ।
हो नहीं सकती है पूरी यह कभी इच्छा तेरी ।।

वेदवती—इच्छा पूरी हो या न हो परन्तु मैं अपने विचार को नहीं छोड़ सकती । एक बार जिसको अपना पति मान लिया है उससे मुख कदापि नहीं मोड़ सकती—

यह गाढ़ा रंग है जो चढ़ गया हृदय के दर्पण पर ।
यह सच्ची कामना है पार जो उतरेगी साधन पर ।।

मरू इस ध्यान में बेशक मरण इक बार होता है।
सती नारी का जीवन में परण इक बार होता है॥

रावण—निस्सन्देह, तू अपने ध्यान में मग्न हो रही है, अन्धे विश्वास के कारण जीवन का तत्त्व खो रही है; परन्तु देख, संसार के सुख भी बार-बार नहीं मिला करते; भोग के साधन नित्य इकट्ठे नहीं हुआ करते। जब यौवन की यह झलक चली जायगी तो इस दिन की याद करके बहुत पछताएगी :—

यह शोभा चन्द्र-मुख की यह जवानी और यह जीवन।
यह रंगत, यह चमक, यह रूप यह जादू भरी चितवन॥
पड़ा है धूल में जो मनहरण अनमोल मोती है।
है सुन्दर फूल तू पैरों तले पामाल होती है॥

वेदवती—कामी! असार संसार के सुखों में फंसाकर मुझे सत्मार्ग से विचलित करना चाहता है; नाशवान कामनाओं का रंग चढ़ाकर मेरे हृदय पर वासना का मैल चढ़ाता है :—

नहीं समझा है अब तक किस कदर है मान अबला का।
परण यह प्राण से प्यारा हमेशा जान अबला का॥
मिले जो राज दुनियां का वचन पर वार दूंगी मैं।
तेरी सोने की लङ्का इक परण पर वार दूंगी मैं॥

रावण—सुन्दरी! होश कर, आंखें खोल, तेरे ज्ञान पर काहे का परदा पड़ा है? क्या तुझे दिखाई नहीं देता कि तेरे सामने कौन खड़ा है?

तेरी कोमल जबां से शब्द जो कड़वे निकलते हैं।
ये तीखे बाण हैं जो प्रेम की गर्दन पै चलते हैं॥

वेदवती—समय आया है ज्ञानी पाप के रस्ते पे चलते हैं।
अनोखी बात है जो वज्र भी मुट्ठी में गलते हैं॥

रावण—समझा ! मतिमन्द अभागिन बाला ! मैं अब तेरा तात्पर्य समझा ! तू अपनी कुबुद्धि से लाचार है, जो रावण का कहना मानने से तुझे इन्कार है। मूर्ख ! क्या मेरे क्रोध की प्रचण्ड अग्नि में कूदकर अपने आप को स्वाहा करना चाहती है ? जो कार्य मैं अपनी इच्छा से नहीं करना चाहता था उसे ही करने के लिए मुझे विवश बनाती है :—

क्रोध को मेरे समझकर खेलती है खेल तू।
बोलकर कड़वे वचन अग्नि पे डाले तेल तू ॥
ऐंठकर रावण से जग में कौन रहने पायेगा।
देखता हूं कौन अब तुझको बचाने आयेगा ॥

[रावण पकड़ने के लिये आगे बढ़ता है, वेदवती पीछे हटती है]

वेदवती—शर्म कर, हिये के अन्धे शर्म कर।

गाना

रावण दुखी को मत दुखा खुद ही मैं बेकरार हूं।
जीवन की आस कुछ नहीं अपना ही आप भार हूं ॥
छेड़ न कर सितम न ढा, शक्ति को अपनी मत जला।
बच के खड़ा हो बेहया ! शोला हूं मैं शरार हूं ॥
सीने में मेरे प्रेम की अग्नि महान जल रही।
आशाएं भस्म हो चुकीं बाकी बचा गुबार हूं ॥
दुखिया को जो सतायेगा, अपनी कुशल गंवाएगा।
बचके कहां को जायेगा, विष को बुझी कटार हूं ॥

रावण—बस बस अब आगे मत बोल—

बहुत कुछ सुन चुका हूं बन्द कर अपनी कहानी को।
इसी अभिमान में खो देगी आखिर जिन्दगानी को ॥

वेदवती—(हंसकर) जिन्दगानी ! क्या जिन्दगानी का मोह दिखाकर ही अपने वश में लाना चाहता है ? क्या मृत्यु से डराकर ही अपनी वीरता का सिक्का जमाना चाहता; जा, ओ चांडाल! यहां से अभी चला जा; यदि कुछ लाज है तो मुझे अपनी सूरत न दिखा :—

देखना पापी का मुह भी एक भारी पाप है।
इसलिए ही मेरे मन में घोर पश्चाताप है।।
मन दुखाकर दीन का क्या हाथ तेरे आयेगा।
याद रख तुझको तेरा यह पाप ही खा जायेगा।।

रावण—ओह ! इतनी ढिठाई ? इतना अभिमान ! देवताओं के महाराज रावण का यहां तक अपमान :—

जमाने भर की शक्ति जिसके आ चरणों में झुकती है।
तमाशा है उसी योद्धा को अबला नार हंसती है।।

वेदवती—जिसे अबला समझता है वह इक बलवान शक्ति है।
जलाकर भस्म कर देगी यह वह ज्वाला दहकती है।।

रावण—बस, अब नहीं सुना जाता है ! तेरे कटीले शब्दों का अन्त हुआ चाहता है देख, रावण का क्रोध क्या करके दिखाता है।

जो हुआ अच्छा हुआ वह ध्यान ही बेकार है।
देख मेरा हाथ अब तेरे गले का हार है।।

[गर्दन पकड़ लेता है]

वेदवती—नहीं, ऐसी बातों से भी तुझे कुछ हासिल नहीं। दुष्ट ! मेरा शरीर तेरे स्पर्श के काबिल नहीं। (गरदन छुड़ा कर) हाय अन्याई ! मेरी काया ही भ्रष्ट बनाई। तेरे छूने से यह शरीर ही अशुद्ध हो गया। अब यह मेरे इष्टदेव की भेंट

नहीं हो सकता; इसलिए इसे त्याग कर नया रूप धारण करूंगी और उसी से तेरी मृत्यु का कारण बनूंगी :—

बना है सामने मेरे जो तू विकराल की सूरत।
जनकपुर से उठूंगी बनके तेरे काल की मूरत॥

[वेदवती के शरीर से ज्वाला प्रकट होना और रावण का डरते २ धीरे-धीरे जाना] [परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

(कैलाश पर्वत की तलहटी)

[रावण अपने विमान में मारीच सहित बैठा हुआ जा रहा है; कैलाश के पास आकर विमान रुक जाता है, रावण को क्रोध आता है]

रावण—हैं ! चलते-चलते अचानक विमान क्यों रुक गया ?—

हुआ है किसका साहस जो मरे पत्थर से टकराकर।
पड़ा है कौन मृत्यु के भंवर में सामने आकर॥
अभी तक क्या कोई संसार में ऐसा भी योद्धा है।
कि जिसने मार्ग में चलते मेरे वाहन को रोका है॥

मारीच—महाराज ! आपको तो वृथा ही इतना रोष है। मेरे विचार में यह केवल वायु का दोष है।

रावण—वायु ! वायु क्या शक्ति है जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर सके ? उसमें इतना साहस कहाँ, जो मेरी इच्छा के प्रतिकूल आकाश-मण्डल में गमन कर सके—

उसके दिल पर है मेरी शक्ति का भय छाया हुआ।
मुद्दतों से मेरे पैरों का है ठुकराया हुआ॥

मारीच—तो फिर इन्द्र की चाल होगी।

रावण—इन्द्र की चाल !

> इन्द्र जैसे नीच का मुझसे कोई नाता नहीं।
> वह तो मेरे सेवकों में भी गिना जाता नहीं ।।

मारीच—तो फिर मेघ ने ही रास्ते में अड़कर अपने अपमान का बदला उतारा होगा।

रावण—मेघ ! वही मेघ जो मेरी सेवा बजाता है ? पानी छिड़क-छिड़क कर लङ्का की गलियों को ठण्डी बनाता है। क्या कहते हो मारीच ?—

> ऐसे कायर भी अगर रोकेंगे मेरी राह को।
> कौन फिर ससार में मानेगा ऐसी जाह को ।।

[नन्दी का प्रवेश]

नन्दी—लंकेश !

रावण—क्यों, कौन है ?

नन्दी—मैं हूं शिवजी महाराज का अनुचर, नन्दी।

रावण—नन्दी ! कहो क्या कहते हो ?

नन्दी—महाराज ! इस राड़ को अधिक न बढ़ाइये। यदि इस ओर से नहीं तो दूसरी ओर से निकल जाइये।

रावण—क्यों निकल जाऊं ? क्या मैं चोर हूं जो छिपकर दूसरी ओर से निकल जाऊं ?

> उठाकर फेंक दूं जो सामने पर्वत भी आ जाये।
> समन्दर खुश्क हो जाये जो मेरा नाम सुन पाये ।।
> गिरा डालूं यदि हो लोहे की दीवार भी आगे।
> मिटा डालूं अगर हो मौत का आकार भी आगे ।।

नन्दी—दानवेश ! कैलाश पर्वत शिवजी महाराज का निवास स्थान

है। इसके ऊपर से किसी प्राणी का गुजर जाना एक प्रकार का अपमान है।

रावण—अपमान? कैसा अपमान? किसका अपमान? क्या शिव भी कोई महान शक्तिमान है, जो उसे अपने अपमान का इतना ध्यान है—

मुंडाकर मूंड, योगी की जमाकर शान बैठा है।
कोई राजा है मानो या कोई भगवान बैठा है॥
न समझी शान मेरी और न देखा दबदबा मेरा।
भला है खेल कोई रोक लेना रास्ता मेरा॥

मारीच—लंकेश! कहां ध्यान है? महादेव की महिमा का तो वेदों में भी बखान है।

रावण—होगा, मैं इसकी परवाह करने वाला नहीं। दानवेश ऐसे-ऐसे कपटी धूर्तों से डरने वाला नहीं—

नहीं हूं ग्रास भोजन का मुझे हर कोई खा लेगा।
बताशा भी नहीं जो पायेगा सो मुंह में डालेगा॥
भयङ्कर काल हूं विकराल हूं विषधर हूं काला हूं।
जलाकर भस्म कर दूंगा मैं वह प्रचन्ड ज्वाला हूं॥

नन्दी—अच्छा तो जाइये! जिस ओर से जी चाहे उसी ओर से चले जाइये।

रावण—क्यों नहीं! अभी कैलाश को उठाकर समुद्र में डाल देता हूं और मैदान साफ करके अपना रास्ता निकाल लेता हूं—

आ बचाये जो इसे शक्ति कहां आकाश को।
फेंक देता हूं हिलाकर अब जड़ें कैलाश की॥

[क्रोध में उठाने का प्रयत्न करता है किन्तु असफल रहता है]

[illegible]—हे संसार को आधीन करने वाले अपार बल! आज तू कहां

सो गया ? हे देवताओं को परास्त करने वाली बलवान भुजाओ ! आज तुम्हें क्या हो गया ?

बढ़ाऊं मैं यदि साहस तो हृदय हांप जाता है।
लगाऊं हाथ जब कैलाश को तो कांप जाता है॥
न जाने हो गया बलहीन दिल बलवान क्यों मेरा।
कराया इस जगह पर आन कर अपमान क्यों मेरा॥

नन्दी—क्यों महाराज! क्या बात है ? अब कैलाश के उठाने में कैसा पश्चाताप है ?

कहाँ है जोर वह जिससे उठाई थी जमीं सिर पर।
कहा हैं तेज वह जिस पर बघारी शेखियां बढ़कर॥

रावण—ठहरो ! एक बार फिर बल लगाने दो। (जोर लगा कर थक जाना) अफसोस !

आ गया तन पर पसीना और यह सरका नहीं।
सच कहा है भाग्य का लिक्खा कोई समझा नहीं॥

नन्दी—बस ! थक गये ! कहाँ है वह शक्ति ? कहां गया वह अभिमान ?

रावण—अभिमान चूर हो गया ! मन का सारा अहंकार दूर हो गया।

हुआ है ज्ञात शंकर की महा महिमा अनोखी है।
अजब लीला तुम्हारी नाथ हमने आज देखी है॥
किया अभिमान जो मैंने यह फल उसका हो पाता हूं।
दया हो नाथ ! अब तो शीश चरणों में झुकाता हूं॥

[रावण का प्रणाम करना, दृश्य बदलना, कैलाश की चोटी पर शिवजी महाराज का बैठे हुए दिखाई देना।]

शिवजी—क्यों लंकेश ! अपनी शक्ति को भली प्रकार आजमा लिया? अब तो अपने अभिमान का फल पा लिया ।

रावण—भोलानाथ ! मैं अहंकार वश आप की महिमा को ध्यान में न लाया; अन्त में अपने किए का फल पाया । हे नाथ ! मुझपर कृपा कीजिए और मेरे विमान को मार्ग दे दीजिए । जय हो ! कैलाशपति आपकी जय हो !

शिवजी—अच्छा जा, जिस ओर से चाहे चला जा । मैं तेरी दीनता पर बहुत प्रसन्न हूं, और ले, तुझे यह चन्द्रहास नामक तलवार देता हूं । यदि तू नित्य इसका पूजन करता रहेगा तो यह तेरी सब प्रकार से रक्षा करेगा; किन्तु यदि एक दिन भी भूल गया तो यह मेरे पास चली आएगी और वही तेरी अन्तिम घड़ी समझी जाएगी ।

रावण—उपकार नाथ ! महा उपकार । आज से मैं सदा आप का दास रहूंगा और आपके वचनों पर विश्वास करूंगा ।

[रावण का विमान पर बैठकर जाना, धीरे-धीरे परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(रावण—दरबार)

[रावण, मन्त्री, मेघनाथ, विभीषण तथा अन्य दरबारी बैठे हैं]

रावण—

कहां है स्वर्ग की पदवी मेरे दरबार के आगे ।
कहां गोलोक की महिमा मेरे विस्तार के आगे ।।
हुआ है आज लंका का जगत में वह 'शिखर ऊंचा ।
न कर सकता है मेरे सामने बैकुंठ सर ऊंचा ।।

ब्रह्मलोक से लेकर पाताल तक और बैकुंठ से लेकर मृत्युलोक

नक सब मेरी जय ध्वनि से गुंजार रहे हैं। देवता और गन्धर्व, दानव और दिगपाल, सब मेरी जय जयकार पुकार रहे हैं। बड़े-बड़े राजा बड़े-बड़े महाराजा, बड़े-बड़े ज्ञानी और योगेश्वरों का सुख मेरी इच्छा पर निर्भर हो रहा है। इन्द्र लोक मेरे वैभव को देखकर डाह की पीड़ा से जर जर हो रहा है। संसार के धनी लालसा को ललचाई हुई नजरों से मेरे भण्डार की ओर ताक रहे हैं। दुनिया के अभिमानी पल्ला पसार कर दया की भीख माग रहे हैं :—

सुसज्जित स्वर्ग से बढ़कर मेरा दरबार रहता है।
जगत की वस्तुओं से पूर्ण यह भण्डार रहता है॥
जो चाहूं मैं वही करने से पहले सामने आये।
यदि उंगली उठादूं सिर जमाने भर का झुक जाये॥

मन्त्री—यथार्थ है महाराज ! यथार्थ है :—

यहां की शान ही इकदम निराली है जमाने से।
जगत पामाल होता है जरा सा लब हिलाने से॥

रावण—निस्सन्देह ! अच्छा अब इस शान को और भी बढ़ाओ; तुरन्त अप्सराओं को बुलाओ और नाच रंग का प्रबन्ध कराओ:—

मेरा ही रंग जम जाये रसीली तान के अन्दर;
मेरा ही नाम गूंजे अप्सरा के गान के अन्दर।
मेरे यशगान में बदमस्त कुल दरबार हो जाये;
ध्वनि यह घूंघरू की बस मेरी झंकार हो जाये।

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज ! द्वारपाल ! अभी जाओ और गाने वालियों को हाजिर करो।

[द्वारपाल का जाना और अप्सराओं सहित आना]

रावण—साकी !

साकी—अन्नदाता !

रावण—जल्दी आओ !

साकी—बहुत अच्छा श्रीमान !

रावण—(प्याला हाथ में लेकर) अहा !

यह वही लालपरी है जिसे कहते हैं सुरा;
देवताओं को भी जिसका नहीं मिलता है मजा ।।
लोग जिस जाम को बदनाम किये देत हैं;
हम उसी जाम को हठा से सिये लेत हैं ।।

मन्त्री—निस्सन्देह !:—

लोग दुनिया के जिसे नीच नशा कहते हैं ।
हम उसी जाम को दुःखों की दवा कहत हैं ।।

मेघनाथ—साकी ! यहां भी लाओ :—

पान मदिरा के बिना लोग वृथा जीते हैं ।
पाप करते हैं इसे जो भी नहीं पीते है ।।

अप्सरा—

गाना

भर भर पिलादे साकिया फस्ले बहार है ।
बागे जहां में आज गुलों पर निखार है ।।
मस्ती का साज छेड के मदहोश बनादे ।
आंखों में नाचता हुआ साकी खुमार है ।।
तेरी नजर में ऐश को दुनिया छिपी हुई ।
मेरी नजर में सोज का आलम हजार है ।।
परदे से ला निकाल के सताना परी को ।
जिसकी अदा पै आज 'कुशल' दिल निसार है ।।

[अप्सराओं का जाना]

रावण—वैसे तो समस्त लोक ही मेरी आज्ञा का पालन करते हैं; सारे राजे-महाराजे मेरी आधीनता का दम भरते हैं। देवता और दिग्पालों को मैंने अपने कारागार में डाल रखा है; दानव और गन्धर्वों का कचूमर निकाल रखा है; परन्तु उनको निकम्मा बिठाने में नीति का अपमान है और फिर राजकोष की भी हानि है। इसलिए मेघनाथ! तुम अभी जाओ, सारे बन्दियों को अलग-अलग काम बताओ और यदि न करें तो हम तक सूचना पहुंचाओ।

मेघनाथ—जैसी आज्ञा महाराज!

[जाना चाहता है, रावण रोक लेता है]

रावण—हां, जरा ठहरो! ऋषि और मुनियों से भी कर हासिल करो और उसे राज्य के कोष में दाखिल करो! साधु, सन्त, महात्मा और धर्मात्मा भी खाली न जाएं, सब मेरे ही नाम की माला फिराए :—

दिशाओं में मेरी ही कीर्ति और यश की चरचा हो।
मेरा ही नाम हर मन्दिर में गूंजे और पूजा हो॥

मेघनाथ—बहुत अच्छा पिता जी! आपकी आज्ञा सिर चढ़ाता हूं और यह सन्देश समस्त संसार को पहुंचाता हूं :—

हर इक मगरूर को लङ्का का मैं सेवक बना दूंगा।
हर इक दिल पर तुम्हारे नाम का सिक्का बिठा दूंगा॥

रावण—शाबाश! :—

सुनादो बस हर एक व्यक्ति को यह ऐलान रावण का।
फिरादो हर तरफ संसार में फरमान रावण का॥
दबाओ हर तरह उसको दबे जो न दबाने से।
जिसे चाहो मिटा डालो उसे फौरन जमाने से॥

मेघनाथ—ऐसा ही होगा पिता जी !

[सिर झुका कर मेघनाथ का जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

[रावण के कारागार में सारे देवता बन्द हैं]

इन्द्र—शोक महाशोक ! :—

कहां मैं स्वर्ग का स्वामी कहां रावण की सेवकाई ;
कहां सुरलोक का शासन कहां बन्धन की कठिनाई ।
विधाता ! दोष क्या मेरा जो यह संकट उठाता हूं ;
महापापी महा क्रोधी का जल भर भर के लाता हूं ।

सूर्य—अफसोस ! :—

अंधेरा हो गया है हाय अब संसार में मेरे ।
नहीं है अब मेरा प्रकाश भी अधिकार में मेरे ।।
करूं क्या नित्य रावण नीच की सेवा बजाता हूं ।
प्रतिदिन उठके प्रातःकाल उसको सिर झुकाता हूं ।।

पवन—हाय ! हाय ! :—

किया है बांधकर जंजीर में बेकार रावण ने ;
मेरी स्वाधीनता भी छीन ली बदकार रावण ने ।
दिशाओं में फिरा करता था ऊधम सा मचाता मैं ;
परन्तु आज लंका में फिरूं झाड़ू लगाता मैं ।

कुबेर—ओह ! :—

कभी अभिमान था परलोक का मैं कोषधारी हूं ;
मगर अब द्वार पर रावण के छोटा सा भिखारी हूं ।

जिसे संसार सुख और सम्पदा का नाथ कहता है;
वही अब कौड़ी-कौड़ी के लिये मोहताज रहता है।

[सबका सम्मिलित गाना]

करेगा तेरा यह नाश रावण जो पाप इतना कमा रहा है;
सताया जाएगा तू भी जग में जो हमको नाहक सता रहा है।
रहेंगे तेरे न यह सदा दिन, गुजर रही है घड़ी-घड़ी छिन;
तुझे भी घेरेगा शोक इक दिन, जो दिल हमारा दुखा रहा है।
न कोई अपराध था हमारा, न मन में तेरा बुरा विचारा;
न राह में तेरी शूल डारा, क्यों क्रोध इतना दिखा रहा है।
न होगी तेरी यह हुक्मरानी, रहेगी बाकी ही बस कहानी;
यह पाप बनकर आकाशवानी, ध्वनि यह तुझको सुना रहा है।

[कोतवाल का आना]

कोतवाल—(डांट कर) अरे अभिमानियो ! अब भाग्य को दोष देना बिल्कुल बेकार है। क्या तुम नहीं जानते कि यह रावण की सरकार है। राजाज्ञा का इसी प्रकार पालन करते हो, कि आलसियों की तरह पड़े-पड़े पेट भरते हो ?

इन्द्र—मूर्ख ! तुझे स्वाधीनता पाकर इतना साहस हो रहा है ! जरा अन्दर आकर तो देख कि हमारा दम हवा हो रहा है।

पवन—गर्मी इतनी अधिक है कि सांस लेना भी दुर्लभ है।

कोतवाल—तो हम क्या करें ? अपने अपने कर्मों का फल भोग रहे हो।

कुबेर—अरे दुष्ट ! हम पर इतना क्यों रोष है ? जरा बता तो सही कि हमारा क्या दोष है ?

कोतवाल—बस मैं अधिक बकवास सुनना नहीं चाहता। इन्द्र ! दिखला तूने कितना काम किया है ? बेमाता! हाजिर कर तूने

कितना दाना दला है ? सूर्य ! क्या तूने राज महल में ठीक प्रकाश नहीं किया ? पवन ! क्या तूने अभी तक लंका की गलियों को साफ नहीं किया ? (देवता चुप रहते हैं) कुछ नहीं सब ने धोका दिया है। जो काम बतलाया था एक ने भी पूरा नहीं किया है। (हन्टर मारना)

देवता—रहने दे अन्यायी ! इस अन्याय को रहने दे। क्या तू नहीं जानता ! कि तुझे भी इस पाप का फल भोगना पड़ेगा ?

[देवताओं और कोतवाल का सम्मिलित गाना]

गाना

देवता—बहुत सही है, सहन करी है, अब नहीं खावें मार।
कोतवाल—रावण को क्या एक घड़ी में भूल गए मुरदार ?
देवता—उस अभिमानी रावण का भी एक दिन आवे काल।
कोतवाल—फिर जो बोले ऐसी वाणी दूंगा जीभ निकाल।
देवता—राज काज यह दो दिन का है क्यों करता है मान ?
कोतवाल—तीन लोक में भी नहीं कोई रावण वीर समान।
देवता—निर्दोषों पर जुल्म नहीं है अच्छा यह हर बार।
कोतवाल—जैसी करनी वैसी भरनी क्यों रोते बेजार ?

[हन्टर मारना]

देवता—दया कर ! अन्यायी कुछ तो दया कर।

[रावण का प्रवेश]

रावण—कोतवाल ! कारागार का निरीक्षण कराओ और प्रत्येक बन्दी का किया हुआ काम अलग- अलग दिखलाओ।

कोतवाल—महाराज ! यद्यपि सारे कैदी महा दुष्ट और आलसी हैं परन्तु हम उतने ही सतर्क और साहसी हैं। पवन समय पर

कर

झाड़ू लगाता है, वरुण अमृत की वर्षा बरसाता है। बेमाता से दाना दलवाया जाता है, इन्द्र से जल भरवाया जाता है। सूर्य और चन्द्र नगरी को प्रकाशित बनाते हैं, कुबेर और यम घोड़ों को लीद उठाते हैं।

रावण—हां! इन अभिमानियां को कभी खाली न बैठने दिया जाय, हर एक से हमारी आज्ञानुसार कठिन काम लिया जाये। अच्छा हम जाते हैं, फिर किसी समय कारागार का निरीक्षण किया जायेगा और यदि सारा कार्य ठीक न मिला तो तुम्हें कठोर दण्ड दिया जायेगा।

कोतवाल—जैसी आज्ञा अन्नदाता

[रावण का प्रस्थान]

कोतवाल—अच्छा अब सारे बन्दी सावधान हो जाएं और अपने २ कर्त्तव्य-पालन में जी जान से लग जायें।

इन्द्र—

गाना

मंजर क्या है तुझको ओ आसमां बतादे।
दुनिया से क्यों मिटाया मेरा निशां बतादे॥
रक्षा का भार सिर पर लिया था तूने।
अब क्या हुई है आखिर तेरी जुबां बतादे॥
क्या पाप कर्म मैंने अपराध क्या किया था।
क्यों पड़ रही हैं मुझ पर आपत्तियां बतादे॥
अन्याय तेरा मुझ पर कब तक बना रहेगा?
कब तक भरूंगा यों ही मैं सिसकियां बतादे?

[धीरे धीरे परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(परदा जंगल)

[ऋषि मुनि कीर्तन कर रहे हैं]

ऋषिमुनि—जय रघुनन्दन जय सिया राम
जानकी बल्लभ जय सुखधाम

[मेघनाथ का सेना सहित आना]

मेघनाद—बस-बस, चुप हो जाओ ! यह क्या बकवास है ? न हमारा भय है न रावण की आज्ञा का पास है।

हो गई है घोषण यह विश्व के विस्तार में।
दास लंका का रहे रहना जिसे ससार में।।
अब सिवा रावण किसी की रट लगाना छोड़ दो।
और के आगे जगत में सिर झुकाना छोड़ दो।।

ऋषि-मुनि—मूर्ख ! हम भगवान को छोड़कर और किसी के आगे सिर नहीं झुका सकते। त्यागी पुरुष किसी की आज्ञा मानने को विवश नहीं किये जा सकते :—

यह आज्ञा प्रेमियों पर गृहस्थ्य के हर बार चलती है।
गृहस्थी के लिए ही हुक्म और सरकार चलती है।।
बनों में बैठकर करते हैं हम तो धर्म का पालन।
न हम से हो सकेगा ऐसे दुष्टाकर्म का पालन।।

मेघनाद—करना पड़ेगा ! महाराज रावण की आज्ञा का पालन तुमको अवश्य करना पड़ेगा। सबसे पहले हमें राजकर दो और फिर रावण का नाम लो !

ऋषि-मुनि—राजकर ! कैसा राजकर ? किस का राजकर? क्या हम

खेती करते हैं या व्यापार चलाते हैं, जो आप हमसे राजकर चाहते हैं !

मेघनाद—चुप रहो ! मेरे पास ऐसी बातें सुनने का समय नहीं, वृथा बकवाद से बाज आओ और शीघ्र राजकर लाओ ! नहीं तो कठोर दण्ड पाओगे, और फांसी पर लटका दिये जाओगे ।

ऋषि-मुनि—अरे बाबा ! हमारे पास तो देने को कुछ भी नहीं ।
हमें तो अन्न भी मिलता नहीं निर्वाह करने को ।
कहां से लाएं इ॰ पैसा नहीं है दण्ड भरने को ।।

मेघनाद—तो वैसे ही आडम्बर रचाए बैठे हो ? सारे वन में शोर मचा रखा है, हाहाकार से आकाश सिर पर उठा रखा है ?

ऋषि-मुनि—भाई ! हम तो भगवान का भजन कर रहे हैं। वह पवित्र नाम ले लेकर अपने पापों का दमन कर रहे हैं । जाओ, हमें वृथा न सताओ ।

मेघनाद—एक बार कह दिया कि जल्दी राजकर लाओ नहीं ता रावण के राज्य से निकल जाओ !

ऋषि-मुनि—निकलकर कहां जायें ? और जब दमड़ी भी न हो तो राजकर कहां से चुकायें ?

मेघनाद—लाओ-लाओ ! यदि तुम्हारे पास और कुछ नहीं तो अपना रक्त ही लाओ ।

ऋषि-मुनि—रक्त ! क्या राजकर में रक्त भी लिया जाता है ।

मेघनाद—(सैनिकों से) देखते क्या हो ! प्रत्येक के बाहु में कांटा लगाओ और रक्त से घड़ा भरकर राजकर चुकाओ !

[सैनिकों का ऋषियों से रक्त लेना]

ऋषि-मुनि—ले जाओ ! हे दुराचारियो ! ऋषियों का रक्त भी ले

जाओ ! परन्तु याद रखो कि यह रक्त ही भयंकर रूप धारेगा और काल बनकर तुम सबको मारेगा।

मेघनाद—ओह ! देखा जायेगा।

[मेघनाद का जाना और ऋषियों का फिर कीर्तन करना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(रावण—दरबार)

रावण—लोकपालों की मर्यादा भंग हो गई, अहङ्कारियों का सिर नीचा कर दिया गया, देवता भिखारियों की गिनती में आ गये, संसार के छत्रधारी रावण के नाम से घबरा गये। परन्तु अब ! हां अभी मुझे बहुत कुछ करना है :—

स्वर्ग को भी अब विजय करके दिखाना है मुझे।
देवपुर के द्वार तक सीढ़ी लगाना है मुझे॥
सम्पदा गो लोक की पृथ्वी पै लानी है मुझे।
अब असम्भव को भी सम्भव कर दिखाना है मुझे॥
आग में गर्मी न हो और मेघ में गर्जन न हो।
है मेरी इच्छा कि दानव वंश का मर्दन न हो॥

मन्त्री—अवश्य, ऐसा ही होना चाहिए महाराज !

रावण—ब्रह्मा का निश्चिन्त वेदपाठ; विष्णु का शेष-शय्या पर शयन और सुरपति का विशाल वैभव अब मुझे बिल्कुल नहीं सुहाता है, बस अब यही देखना है कि इन्हें नष्ट होने से कौन बचाता है :—

कोप दृष्टि से मेरी बचने न कोई पाएगा।
आयेगा जो सामने बस वह ही कुचला जायेगा॥

देवता, गन्धर्व दान्व और किन्नर कौन है ?
मैं ही हूं लोकों का स्वामी मुझसे बढ़कर कौन है ।।

[मेघनाथ का प्रवेश]

मेघनाद—(प्रणाम करके) पिता जी ! आप की आज्ञा सारे विश्व में सुना दी गई है । बड़े-बड़ अभिमानियों की गर्दन झुका दी गई है । अब सारे प्रतापी और पराक्रमी हमारे नाम से घबराते हैं; ऋषि-मुनि आपके नाम की ही माला फिराते हैं ।

रावण—शाबाश ! मुझे तेरे जैसे सुपुत्र की ही आवश्यकता है । परन्तु हां ! इस घड़े में क्या लाये हो ?

मेघनाद—महाराज ! इसमें ऋषियों और मुनियों का रक्त है, जो उनसे राजकर के रूप में वसूल किया गया है परन्तु चलती बार उन्होंने एक कठोर शाप दिया है ।

रावण—वह क्या ?

मेघनाद—यही कि यह रक्त रूप धारेगा और विकराल काल बनकर तुम सबको मारेगा ।

रावण—रूप धारेगा ? झूठ ! बिलकुल झूठ ! क्या प्रकृति के नियम के विरुद्ध रक्त से भी जीव उत्पन्न हो सकता है ? नहीं, कदापि नहीं ! ले जाओ और इसे मिथिला पुरी की सीमा में गाड़ आओ !

मेघनाद—जो आज्ञा !

[मेघनाद का जाना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(परदा जंगल)

[गोरूप पृथ्वी का आना]

गाना

पृथ्वी—

दीनों की हाहाकार पर भगवान आना चाहिये;
फिर बढ़ गया अन्याय जल्दी से मिटाना चाहिये।
तुमने दिया था क्या वचन, पापों का करता हूं हनन;
भगवान वह अपना परण, कुछ तो निभाना चाहिए।
संकट सहा जाता नहीं, मुख से कहा जाता नहीं;
चुप भी रहा जाता नहीं, स्वामी बचाना चाहिए।
अब पाप भारी हो गया, जीवन दुखारी हो गया;
यह घाव कारी हो गया, मरहम लगाना चाहिये।

हाय हाय! अब तो त्रेताकाल ही कलियुग के समान हो गया, नीति और धर्म का जीवन कठोर और महान हो गया। गौ और ब्राह्मण सताये जाने लगे; साधु और महात्मा कष्ट उठाने लगे। स्थान-स्थान पर मदिरा और मांस का सेवन होने लगा; अबलाओं और अनाथों का मन बिलक २ रोने लगा—

अधर्मी हो गई दुनियां सुनाया भी नहीं जाता।
पड़ा है भार पापों का उठाया भी नहीं जाता॥

हे ब्रह्मा, महेश, अग्नि और कुबेर आदि देवताओ! मेरी रक्षा करो! मैं महान दुःख पा रही हूं मेरी रक्षा करोः—

मिटाओ अब मेरा संकट उबारो आके निर्बल को।
नहीं तो जा रही हूं हाय मैं धसती रसातल को॥

[प्लाट का फटना, देवताओं का दर्शन]

ब्रह्मा—हे पृथ्वी ! मन में धीरज धरो ! इस प्रकार हाहाकार न करो हम सब तुम्हारे हित के लिये विष्णु भगवान से प्रार्थना करते हैं। वे अवश्य तुम्हारा सकट दूर करेंगे और भूमि का भार हरेंगे।

पृथ्वी—धन्य हो देवताओ, तुम धन्य हो।

देवता—हे नाथ ! यह दीन पृथ्वी आपकी शरण में आई है। इस का संकट दूर कीजिये और शीघ्र ही भूमि का भार हर लीजिये।

पृथ्वी—सुनो ! हे भगवान ! गोरूप पृथ्वी को पुकार सुनो ! राक्षस मेरे ऊपर घोर अत्याचार करने लगे हैं; सन्त और महात्मा उनके दुराचारों से डरने लगे हैं। अधर्म का भार बढ़ता जा रहा है। न्याय पर अन्याय का मैल चढ़ता जा रहा है :—

अधर्मी दुष्ट और पापी जनों की मैं सताई हूं।
दुखी होकर शरण में आपकी भगवान आई हूं ॥

गाना

आओ हे नाथ ! अब तो संकट मिटाने आओ।
हर बार की तरह फिर दर्शन दिखाने आओ ॥
अब पाप पापियों का सीमा से बढ़ चला है।
फिर धर्म बाण लेकर इस को घटाने आओ ॥
दीनों के नाश पर अब पापी तुले हुए हैं।
मिटना ही चाहता है जीवन बचाने आओ ॥
होने लगी है खण्डित मर्यादा वेद की फिर।
गौओं को लग गये हैं जालिम सताने आओ ॥

[दृश्य परिवर्तन पर क्षीर सागर का दर्शन]

विष्णु भगवान—पृथ्वी ! :—

पुकारा तूने जब मुझको तो मैं फौरन चला आया ।
समझ ले संकटों का अब तेरे अन्तिम समय आया ।।

गाना

मैं आ रहा हूं देश के उद्धार के लिये ।
पापी के नाश धर्म के प्रचार के लिये ।।
भाता नहीं है पाप का दुनियाँ में फूलना ।
संसार मेरा और मैं संसार के लिये ।।
पृथ्वी, समझ ले कष्ट का अब अन्त हो गया ।
धारण करूंगा तन तेरे उपकार के लिये ।।
वचनों की याद रहती है हृदय में हे कुशल ।
व्याकुल हुआ है मन मेरा अवतार के लिए ।।

पृथ्वी—धन्य हो नाथ ! धन्य हो !

[विष्णु भगवान का अन्तर्धान होना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(राजा जनक का दरबार)

जनक—मन्त्री जी ! कुछ समय से प्रजा की कुशल सुनने में नहीं आई । यदि कोई नया समाचार हो तो सुनाओ !

मन्त्री—महाराज ! जहां आप जैसे धर्मज्ञ राजा का राज हो वहां प्रजा में अशान्ति कैसे हो सकती है ?

[हाहाकार की आवाज आना]

जनक—हैं ! यह हाहाकार कैसी ? शान्ति में व्याकुलता की पुकार कैसी ?

दुखी है कौन देखो कौन यह फरियाद लाया है।
कोई रोगी है या कोई किसी दुःख का सताया है ।।

[प्रजावासियों का आना]

गाना

प्रजावासी—

दुखों के मारे, खड़े हैं द्वारे, पुकार अपनी सुना रहे हैं।
सुनो हे राजा! दुखी है जनता हजारों संकट उठा रहे हैं।।
न मेघ आया न पानी बरसा, अनाज बिलकुल हुआ न पैदा।
हमारे बच्चे मरे हैं भूखे गरीब सब बिलबिला रहे हैं।।
गुजारें हम कैसे जिन्दगानी मिला न पीने को बून्द पानी।
कुशल-तड़प कर हजारा प्राणी ही प्राण अपने गवां रहे हैं।।

महाराज! भयकर अकाल के कारण सब लोग भूखों मर रहे हैं; कई-कई दिन में एक-एक बार खाकर निर्वाह कर रहे हैं। परन्तु अब तो उतना भी सहारा नहीं रहा, बताइये कि हम कहां जाएं किस के द्वार पर अपनी पुकार सुनाएं?

जनक—प्रजा! दीन प्रजा! मुझे तेरी दशा पर रोना आता है; तेरा यह अकाल-पीड़ित दृश्य मुझे खून के आंसू रुलाता है:—

भला किस काम आएगी यह मेरी सम्पदा सारी।
हुई है राज्य में व्याकुल जो मेरे यों प्रजा सारी ।।

प्रजावासी—महाराज! इसमें आपका क्या दोष है; हमारे कर्मों के कारण वरुण देवता ही निष्ठुर हो रहे हैं।

जनक—हे अकाल से पीड़ित लोगो! तुम किसी प्रकार न घबराओ! जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता हो वह राज्य के कोष से ले जाओ। मैं गुरु जी की सम्मति लेकर इस अकाल का भी उपाय करूंगा और जिस प्रकार होगा प्रजा का संकट हरूंगा।

प्रजावासी—जय हो ! महाराज जनक की जय हो !

[सब का जाना]

जनक—(शतानन्द पुरोहित से) गुरु जी ! भयंकर अकाल पड़ने से सारी प्रजा बिलबिला रही है, लोगों की जान संकट में आ रही है कृपा करके इस आपत्ति को टालने का कोई उपाय बताइये और विचार पूर्वक मेरी शंका को मिटाइये ।

शतानन्द—(पत्रा देखकर) राजन् ! इस वर्ष वर्षा के ग्रह प्रतिकूल पड़े हुए हैं । अकाल पड़ने की पूर्ण संभावना है और इससे बचने का केवल यही उपाय है कि आप स्वर्ण का हल बनवाएं और रानी सहित जाकर स्वयं अपने हाथों से चलाएं । लग्न कहता है कि इस विधि से यह संकट अवश्य दूर होगा और वृष्टि होकर अन्न भरपूर होगा ।

जनक—बहुत अच्छा महाराज ! यह तो कुछ भी बात नहीं । प्रजा के हित के लिये मैं हर उपाय करने को तैयार हूं ।

[सीन ट्रांसफर, खेतों का दृश्य, राजा जनक का रानी सहित हल चलाते दिखाई देना, सीता जन्म परदा गिरना]

तृतीय अंक

दृश्य पहला

(दशरथ-दरबार)

[दशरथ, मन्त्री, गुरु वशिष्ठ, सभासद आदि बैठे हैं, द्वारपाल पहरे पर खड़े हुए हैं]

दशरथ—मन्त्री जो ! संसार में यों तो अनेक राजा राज्य चलाते हैं, किन्तु ऐसे बहुत ही थोड़े होंगे जो प्रजा के हितैषी और धर्मज्ञ समझे जाते हैं। जिस प्रकार प्रजा का प्रेम राज्य की जड़ों को दृढ़ बनाने वाला होता है उसी प्रकार राजा का न्याय राजा को ऊंचा उठाने वाला होता है :—

सदा से एकता के आसरे संसार चलता है।
प्रजा और राज से मिलकर ही कारोबार चलता है ।।

मन्त्री—यथार्थ है महाराज !

दशरथ—नीति में कहा है कि जिस शरीर में प्राण नहीं, जिस सरोवर में कमल नहीं, जिस घर में दीपक नहीं, जिस राज्य में राजा नहीं जिस राजा में न्याय नहीं; वह मरघट के समान है।

मन्त्री—इस में क्या सन्देह है श्रीमान !

[श्रवण का गाते हुए प्रवेश]

गाना

श्रवण—

मां बाप की शरण में ही जीवन-सुधार है।
यह आत्मा-उबार है भक्ति का सार है ।।

चरणों में उनके बसती है मुक्ति, अपार ज्ञान।
इक बार नाम लेते ही भवसिन्धु पार है॥
सत्कर्म, यज्ञ, योग, तपस्या, दया व धर्म।
माता-पिता की भक्ति ही इन सब का द्वार है॥
माता-पिता की सेवा में बस प्रेम चाहिये।
संसार के मंझार से फिर बेड़ा पार है॥

सभासद—पधारिये! पधारिये! श्रवणदेव! पधारिये!

श्रवण—माता-पिता के चरण में प्रथम नवाकर शीश।
याद करूं फिर हृदय में दीन बन्धु जगदीश॥
गुरु वशिष्ठ के चरण में है मेरा आदेश।
नमस्कार है आपको दशरथ अवध-नरेश॥

दशरथ—अहा :—
शुभ दिन, शुभ पल, शुभ घड़ी, शुभ अवसर, शुभ काल।
श्रवण देव मम नगर में आये हुआ निहाल॥

वशिष्ठ जी—निस्सन्देह!
इष्टदेव सम मानकर तज कर कपट विचार।
मातृ-भक्त संसार में श्रवण एक अवतार॥

श्रवण—गुरुदेव!
बड़ा बनकर नहीं आया मैं बालक बनके आया हूं।
तुम्हारे द्वार पर हे नाथ! याचक बनके आया हूं॥

वशिष्ठ—हां हां कहो पुत्र, अपने आगमन का कारण भी कहो?

श्रवण—नाथ! जिस प्रकार बिना पति की पत्नी, बिना श्रद्धा का शिष्य और बिना न्याय का राजा पाप की खान होता है, उसी प्रकार बिना माता-पिता की भक्ति के एक पुत्र का जन्म नारकीय कीड़े के समान होता है। आपको सब प्रकार ज्ञात है कि

मेरे माता-पिता में सदैव का अन्धापन है हे नाथ ! वही मेरे लिये हर समय चिन्ता का कारण है। मैं चाहता हूं कि :—

मिटे जीवन मेरा और आत्मा में उनकी बल आये।
महा रोगी बनूं मैं दूर उनका रोग हो जाये॥
निछावर उन पै हो जाऊ अगर कह दे जरा कोई।
मैं अपने प्राण भी देदूं जो हो उनकी दवा कोई॥

वशिष्ठ—परन्तु बेटा ! तुम अपने माता-पिता के अन्धे होने का कारण भी जानते हो ?

श्रवण—नहीं ! जानता नहीं ! परन्तु जानने की अभिलाषा अवश्य है।

वशिष्ठ—अच्छा तो सुनो ! तुम्हारे माता-पिता सदैव के अन्धे नहीं हैं। उनके कोई पुत्र नहीं होता था। उन्होंने पुत्र-प्राप्ति के लिये कठिन तप किया; तब ब्रह्मा जी प्रसन्न होकर कहने लगे कि तुम्हारे भाग्य में पुत्र का मुख देखना नहीं बदा है। हां ! यदि तुम अन्धा होना स्वीकार करो तो हम पुत्र दे सकते हैं। इस पर उन्होंने अन्धा होना स्वीकार करके पुत्र मांग लिया। हे वत्स ! इस प्रकार तुम्हारा जन्म हुआ।

गाना—तर्ज (मिटाओ नाथ अब……)

सुनो बेटा अनोखी इक कहानी;
जरूरी आज जो तुम को सुनानी।
किसी के त्याग का फल पुत्र जानो।
यह बल, यह रूप, यह योवन जवानी॥
किसी के आशरे पर ही बनी है
यह जीवन के सरोवर की रवानी

बड़ी आशाओं से मिल कर हुई है।
किसी निर्दोष की रोशन निशानी ॥

श्रवण—अहा ! धन्य है ! आज मुझे ज्ञात हुआ कि मुझ पर माता-पिता का कितना ऋण है। इतनी ममता ! ऐसी उदारता ! पुत्र के कारण पृथ्वी पर सोये,पत्त खाये, सर्दी गर्मी सही, अन्त में अन्धा होने की शर्त भी स्वीकार की। यह है उपकार, यह है विशाल हृदय; परन्तु मैं भी प्रतिज्ञा करता हूं कि उनकी सेवा में अपने जीवन को बलिदान कर दूंगा; संसार को माता-पिता की भक्ति दिखाता हुआ अपने प्राणों का अन्त कर दूंगा :—

अपनी चिन्ता कुछ नहीं चिन्ता है उनके काम की।
जिस तरह भी बन सके सूरत बने आराम की ॥

वशिष्ठ—धन्य है! संसार को तुम जैसे सुपुत्रों की ही आवश्यकता है।

श्रवण—बस नाथ ! अब विलम्ब न कीजिये, मेरी आशा शीघ्र ही पूर्ण कीजिये :—

है आपकी दया में ही आराम दीन का।
उपकार होगा आपका और काम दीन का ॥
बतलाइये उपाय कि पूरी यह आस हो।
अन्धों की आंख में प्रभु ज्योति का बास हो ॥

वशिष्ठ—हां सुनो ! यदि तुम उनको प्रयाग, काशी, बद्रीनाथ, रामेश्वरम् आदि समस्त तीर्थों की यात्रा कराओगे तो ईश्वर की कृपा से उनका स्वस्थ पाओगे :—

बना देता है मोती बूंद को जो सीप के घर में।
उगाता है जो दाना खाक में और लाल पत्थर में ॥
जो सुख रोगी को देता है सदा और अन्न भूखों को।
दया करके वही देवेगा दो आंखें भी अन्धों को ॥

श्रवण—उपकार ! प्रभु महा उपकार !

अभी सम्वाद यह माता-पिता को जा सुनाता हूं।
मैं खाली हाथ आया और झोली भर के जाता हूं ॥

दशरथ—परन्तु श्रवण कुमार ! अपने अन्धे माता-पिता को सारे तीर्थ किस प्रकार कराओगे ? दो अन्धे प्राणियों को लेकर घन गम्भीर बनों और पर्वतों की कन्दराओं में किस प्रकार जाओगे ?

श्रवण—श्रद्धा के आधार पर ! भक्ति के सहारे पर ! गुरु वशिष्ठ के आशीर्वाद से और आप के प्रताप से :—

बनाकर काठ की कांवड़ उन्हें कन्धे चढ़ाऊंगा।
फिरूंगा तीर्थों पर अरु उन्हें नाहन कराऊंगा ॥
करूंगा उनकी पूजा देव की पूजा समझ कर मैं।
झुकाऊंगा यह सिर भगवान की प्रतिमा समझ कर मैं॥

सब—धन्य है ! श्रवण कुमार ! तुम्हारी मातृ-पितृभक्ति को धन्य है।

वशिष्ठ—क्यों न हो ?

मात-पिता के चरण में जिसका प्रेम प्रधान।
संकट सब ससार के उसको सरल महान ॥

[श्रवण का जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

[परदा जंगल, श्रवण के माता-पिता बैठे हैं]

शान्तु—विधाता ! तुम धन्य हो! तुमने पुत्र रत्न देकर हमारा उद्धार कर दिया :—

मान, मर्यादा, सदन, धन, सम्पदा क्या चाहिये।
जिसको ऐसा सुत मिले उसको भला क्या चाहिये ॥

श्रवण—(आकर और नमस्कार करके)

> मात-पिता मम देवता, सुख-सागर, सुख-धाम।
> आज्ञा कारी पुत्र का साष्टाङ्ग प्रणाम॥

शान्तु—जीवित रहो पुत्र! कहो गुरु वशिष्ठ से हमारे नेत्रों को क्य दवा लाए?

श्रवण—महाराज!

> गया जब आपके हित बनके उनके पास मैं याचक।
> बताई है उन्होंने औषधि यह रोग की नाशक।
> कराओगे उन्हें सब तीर्थ जो तुम शुद्ध श्रद्धा से।
> तो अच्छे नेत्र भी हो जाएंगे ईश्वर को कृपा से॥

शान्तु—परन्तु बेटा! हम अन्धे हैं, हम बूढ़े हैं, हम निर्बल हैं, तीर्थ-यात्रा कैसे करेंगे?

श्रवण—तो चिन्ता ही क्या है? यदि आप अन्धे हैं तो मेरी तो आंखें हैं; यदि आप बूढ़े हैं तो मैं तो बूढ़ा नहीं हो गया हूं; यदि आप निर्बल हैं तो मेरे शरीर में तो बल है। आप को अपने कन्धो पर बिठाकर स्थान-स्थान का गमन करूंगा। अपने हाथ से रसोई बनाकर आपके भोजन का प्रबन्ध करूंगा।

> मेरी आंखें दिखायेंगी तुम्हें रस्ता दिया बनकर।
> करेंगे हाथ सेवा आप के सेवक पिता बनकर॥
> न आये पांव जो थे काम तो इन को जुदा कर दूं।
> इशारा हो यदि तो प्राण भी अपने विदा कर दूं॥

शान्त—धन्य हो पुत्र! तुम धन्य हो!:—

> कौन कहता है कि तुम केवल प्रिय सन्तान हो;
> आंख की ज्योति हो बेटा देह के तुम प्राण हो।

[श्रवण का धीरे-धीरे अपने माता-पिता को कावड़ में बिठाना और चलते-चलते गाना]

गाना

श्रवण—

कहे चाहे कुछ भी मुझे कुल जमाना।
तुम्हें मन के मन्दिर में चाहूं बसाना॥
बनाकर तुम्हारी अनोखी सी प्रतिमा।
उसी पर सदा भाव का जल चढ़ाना॥
दिखाऊं तुम्हें नेत्र-ज्योति से रस्ता।
यही आरती हो मेरी जगमगाना॥
तुम्हारा ही यशगान हर दम करूं मैं।
यही कीर्तन हो मेरा यह ही गाना॥
करूं प्राण बलिदान सेवा में उनकी।
इसी ढंग से हो कुशल स्वर्ग जाना॥

[परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(परदा जंगल)

[राजा दशरथ आखेट खेलते हुए आते हैं]

दशरथ—(अपने साथियों से) बन के भयंकर पशुओं ने मेरी प्रजा को महान कष्ट पहुंचाया है। देखो, उस ओर तुम सब चले जाओ और जो हिंसक पशु मिलें उन्हें मार भगाओ! इधर मैं जाता हूं।

[सब का जाना, श्रवण का अपने माता-पिता को उठाए हुए आना]

गाना

श्रवण —

मुझको सेवा है मिली जन्म बिताने के लिये।
देह पाई है यह कर्त्तव्य निभाने के लिये।।
जब तलक जीओ करो मात पिता की सेवा।
यही शिक्षा है मेरी सारे जमाने के लिये।।
यज्ञ, तप, दान, दया धर्म का है मार्ग यही।
रास्ता है यही इक स्वर्ग में लाने के लिये।।
ढूंढ आनन्द न संसार के भोगों कुशल।
दिल मिला है यह तुझे दर्द उठाने के लिये।।

माता जी ! पिता जी ! अब हम अयोध्या के निकट आ गए हैं। यहां कुछ देर विश्राम कीजिये और यदि कुछ इच्छा हो तो आज्ञा दीजिए।

शान्तु—अहा विधाता ! आज फिर जन्म भूमि की रज मिली। बेटा! तुम भी थक गए होगे, थोड़ी देर विश्राम कर लो।

श्रवण—नहीं पिता जी ! मुझे बिलकुल भी थकान नहीं है। आप निश्चिन्त लेट जाइये और मुझे चरण सेवा का सौभाग्य दीजिए।

श्रवण की माता—बेटा श्रवण ! प्यास बहुत सता रही है। यदि हो सके तो कुछ जल का प्रबन्ध करो।

श्रवण—अवश्य करूंगा माता जी ! अवश्य करूंगा। आपको उस सामने वाले वृक्ष के नीचे बिठाकर जाऊंगा और कहीं से जल ढूंढ कर लाऊंगा।

[दोनों को वृक्ष के नीचे बिठाकर जाना और जाते-जाते गाना]

गाना

श्रवण –

लेने को जल चला तो मैं लेकिन यह मन अधीर है।
पांव हैं लड़खड़ा रहे कम्पित हुआ शरीर है।।
अच्छा हो यह घड़ी टले भगवन यह पुण्य-फल मिले।
तेरा ही नाम ले चले, रक्षक तु ही अखीर है।।
अशगुन जो कोई हो गया, अन्धो का कौन आसरा।
अपना नहीं है भय कुशल, मन में उन्हीं की पीर है।।

[श्रवण का जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(सरयू नदी का दृश्य)

श्रवण—अहा ! निर्मल जल कैसी शोभा दिखा रहा है। नदी का प्रवाह शीघ्रता से उमड़ा जा रहा है !

[श्रवण का नदी में लोटा डुबोना, पटाखे की आवाज पर तीर लगना, श्रवण का गिर पड़ना।]

श्रवण—आह ! बाण बड़ा तीक्षण लगा ! हाय ! माता पिता मेरे तीर लगा ! ओह ! मेरा प्राण निकला, मैं चला, मैं मरा, माता ! माता ! पिता ! पिता !

गाना

हो गया कैसे समय यह काल ग्राहक जान का।
घाव कारी है लगा सीने में मेरे बाण का।।
हो चुका जीवन मेरा अब सांस पूरे हो चुके।
अब भरोसा एक पल को भी नहीं है प्राण का।।

देख लो माता-पिता अन्तिम समय आकर मुझे।
देखना तुमको मिलेगा फिर न मुख सन्तान का।।
प्यास व्याकुल कर रही होगी 'कुशल' निश्चय वहां।
हो सकेगा पर न अब प्रबन्ध कुछ जलपान का।।

हाय! हाय! माता-पिता अब तुम कैसे दिन काटोगे? अब तुम किसके सहारे जीओगे? आज तुम्हारे हाथों की डंगोरी भी टूट गई; आज तुम्हारे मन को सभालने का सहारा भी नष्ट हो गया। मुझे मरने में पूर्ण शान्ति है किन्तु केवल यही दुःख है कि अब तुम्हें तीर्थ-यात्रा कौन करावेगा? प्यास से मरते हुओं को जल कौन पिलावेगा? :—

देख कर किसको करोगे गर्व अपने भाग्य पर।
कौन जल डालेगा ममता की भड़कती आग पर।।

दशरथ—(एक ओर चौकन्ना होकर) हैं! कौन बोला? किसने पुकारा? किसको बाण लगा? :—

हो गया क्या जुल्म धोके में किसी की जान पर।
चला गया क्या वाण मेरा उफ किसी इन्सान पर।।

श्रवण—(कराहते हुए) आह! माता! माता! पिता! पिता! :-

प्यास अब कैसे बुझाऊं हाय मैं लाचार हूं।
किस तरह सेवा करूं मरने को अब तैयार हूं।।
आ गई एक एक पल अब शोक और सन्ताप की।
मर गया मैं कौन फिर सेवा करेगा आपकी।।

दशरथ—(श्रवण को देखकर) ! कौन श्रवण कुमार! अन्धे और अन्धी का प्राणाधार! निर्बल और दीनों का सहारा! बूढ़े मां बाप का प्यारा! हाय अभागे दशरथ! तूने किसको बाण मारा?

क्यों बला टूटी न मुझ पर और धनुष पर बाण पर।
तोड़ डाला जुल्म पापी बेकसों को जान पर॥
उफ! सितम उन बेसहारों का सहारा यह ही था।
हाय उन अन्धों की आंखों का तो तारा यह ही था॥

श्रवण—(स्वयं) आह! माता-पिता! अब तुम्हारा आज्ञाकारी पुत्र समाप्त होता है। अब तुम्हारी रही सही आशा भी टूटती है। हाय-हाय! तुम कैसे धीरज धरोगे? किसको देखकर मनको शान्त करोगे?

आत्मा परलोक में बेटे को देखे बिन गई।
इक डंगोरी थी बुढ़ापे की सो वह भी छिन गई॥

दशरथ—(श्रवण से लिपट कर) श्रवण कुमार! मुझ निर्दयी के शिकार श्रवण कुमार! बेटा आंखें खोलो, अन्तिम बार अपने प्राण-घातक से बोलो! देखो! तुम पर बाण छोड़ने वाला मैं हूं। तुम्हारी पवित्र और कोमल जान पर अन्याय का वज्र तोड़ने वाला मैं हूं। हाय! हाय! कैसा अनर्थ हो गया! कितना अन्याय कर डाला? :—

दीन दुखिया की तमन्ना किस तरह बरबाद की।
रौंद डाली निर्दयी खेती किसी नाशाद की॥

श्रवण—(करवट लेकर) कौन! दशरथ! अयोध्या नरेश दशरथ प्रणाम!

दशरथ—गिर पड़! हे आकाश मुझ पर गिर पड़! टूट जा! हे वज्र मेरे सिर पर टूट जा! खा जाओ! हे संसार की बलाओ! मुझ पापी को खा जाओ। :—

सुन रहे हैं कान इस निर्दोष के प्रणाम को।
हाय दशरथ कर दिया बदनाम कुल के नाम को॥

गाना

हाथ छोड़ा हाय दशरथ बेखता की जान पर।
शोक तेरी वीरता पर शोक तेरे बाण पर।
बनके जनता का सहाई होके रक्षक दीन का।
पाप करने लग गया निर्दोष जन के प्राण पर॥
हाय ! वे निर्दोष पानी भी नहीं जिनको मिला।
रोयेंगे कह—कह के क्या अपनी प्रिय संतान पर॥
हाय! वह कच्ची कली जिसने न देखी थी बहार।
सूख कर मुरझा गई अन्यायी तेरे बाण पर॥

श्रवण—अयोध्या-नरेश ! इतना पश्चाताप ! महाराज आपने तो जंगली पशु समझ कर बाण मारा है और फिर भाग्य के आगे किसका इजारा है ? आवागमन संसार का अटल नियम है। जो आया है एक दिन उसका निश्चय गमन है। मुझे इस मृत्यु में भी बड़ा आनन्द है, क्योंकि जब तक जिया माता-पिता की सेवा करता रहा और अब मर रहा हूं तो भी माता-पिता की सेवा में ही मर रहा हूं।

हे विधाता ! चाहता हूं अब दया यह आपकी।
जन्म लूं जिस योनि में सेवा करूं मां-बाप की॥

दशरथ—श्रवण ! श्रवण ! पितृ-भक्त श्रवण ! बेटा ! मैंने तेरा अपराध किया है। अन्धा बनकर तुम निर्दोष का प्राण लिया है। अब तुम भी मुझसे अपना बदला लो। :—

चुकाते जाओ अपना दण्ड बेटा ! अपने जीवन में।
उठाकर बाण अपने हाथ से मारो मेरे तन में॥

श्रवण—महाराज ! आप क्या कहते क्या कभी ऐसा भी हो सकता है !

दशरथ—तो क्या तुम मुझे दण्ड नहीं दोगे ?

श्रवण—कभी नहीं ।

दशरथ—मुझ अन्यायी से इस पाप का बदला नहीं लोगे ?

श्रवण—कदापि नहीं !

दशरथ—अच्छा तो इतना ही करो कि इस अभागे दशरथ से अन्तिम बार कोई सेवा ही लेलो।

श्रवण—अच्छा ! यदि आपकी यही इच्छा है तो इतना काम कीजिये कि इस लोटे में जल ले जाकर सामने वृक्ष के नीचे बैठे हुए मेरे अन्धे माता-पिता को पिला दीजिये ।

दशरथ—बहुत अच्छा ! और कुछ ।

श्रवण—हां जरा मेरे निकट आइये और मेरी छाती से यह बाण निकालते जाइये ।

दशरथ—(बाण निकालते हुए) हाय हाय ! पश्चाताप से हृदय जला जा रहा है । कलेजा मुंह को आ रहा है। क्या करूं ? कहां जाऊं ? अपना काला मुख कहां छुपाऊं !

मातृभूमि फट के अपनी गोद में लेले मुझे ।
अन्यथा दुनियां कहेगी धिक तुझे धिक-धिक तुझे।।

श्रवण—क्षमा ! माता-पिता क्षमा !

हो चुका जीवन मेरा होठों पै अन्तिम सांस है ।
अब तुम्हारे नाम की ही मुझको केवल आस है ।।

[श्रवण का प्राणांत होना,दशरथ का जल लेकर आना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(परदा जंगल)

[वृक्ष के नीचे श्रवण के माता-पिता बैठे हैं]

शान्तु—श्रवण ! बेटा श्रवण ! कहां हो ? जल्दो आओ। क्या अभी तक तुम्हें जल नहीं मिला ? हाय बेटा ! हमारी आत्मा में अशान्ति बढ़ती जा रही है, आखें तुम्हें देखने को अकुला रही हैं :—

गाना

अन्धे तड़प रहे हैं श्रवण कुमार आजा।
तुझ बिन सकल जगत में है अन्धकार आजा ॥
कित जा छिपे हुए हो ? परदे में कौनसे हो
बेचैन कर रहा है अब इन्तजार आजा ॥
इक-इक घड़ी में सौ-सौ खिदमत बजाने वाले।
अन्धों का कौन है जो कर लेगा प्यार आजा ॥
तुझ बिन तो मर मिटेंगे भूखे ही हम जगत में।
अब कौन देगा लाकर हमको आहार आजा ॥
तेरे विरह में बेटा प्राणों की क्या कुशल है।
आंखें हैं बन्द, दिल है अब बेकरार आजा ॥

श्रवण की माता—बेटा ! बोलो ! जल्दी बोलो। :—

मन हुआ बेचैन अब तोड़ो न मेरी आस को।
ध्यान में बेटा तेरे मैं भूल बैठी प्यास को ॥

दशरथ—(आकर एक ओर) हाय-हाय ! क्या कहूं ? इन बेचारों को किस प्रकार उत्तर दूं ?

हो रहे लौलीन कितने पुत्र के ही ध्यान में।
क्या करूं दूं शान्ति क्योंकर इन्हें भगवान मैं।

! तुम इतनी देर तो किसी काम में नहीं लगाते थे, जब हम बुलाते थे तो दौड़े आते थे। आज कहां चले गए ? आओ जल्दी आओ।

दशरथ—आया, आया, माता-पिता, आपके लिये जल लेकर अभी आया लीजिये जल पी लीजिये ।

श्रवण की माता—यह तो श्रवण की आवाज नहीं है। भाई तू कौन है ? और हमारा श्रवण कहां है ।

दशरथ—माता जी, आप प्यासी हैं, पहले जल पी लीजिये फिर सब कुछ बता दूंगा ।

श्रवण की माता—नहीं ! हम श्रवण के बिना कदापि जल नहीं पोयेंगे । सच बता हमारा श्रवण कहां है ।

दशरथ—बताऊं ! कैसे बताऊं ? किन शब्दों में बताऊं ? कौन से मुख से बताऊ ?

गिरी है दिल पे बिजली और जिगर में आग जलती है।
करूं उसका बयां क्योंकर कि मुख से हा निकलती है ।।
सहारा हाय तुम दोनों का अब सुरपुर सिधारा है।
तुम्हारे पुत्र को मैंने इन्हीं हाथों से मारा है ।।

श्रवण की माता—हाय विधाता ! मैं लुट गई (मूर्छित हो जाना)

शान्तु—हाय भगवान ! यह कैसा वज्र गिरा ? (मूर्छित हो जाना)

दशरथ—क्या देख रहा हूं ? हे ईश्वर ! मैं आज इन अभागी आंखों से क्या देख रहा हूं :—

काटा है तीर से जो लख्ते जिगर किसी का ।
हाथों मेरे हुआ है बरबाद घर किसी का ।।

(दोनों के मुख पर पानी छिड़क कर) उठो ! उठो ! हे पुत्र के वियोगियों ! श्रवण की मृत्यु पर दो आंसू बहाने के लिये तो उठो :—

रह गया रोना सदा को बेबसी की जान का ।
चूम लो इक बार मुखड़ा प्रिय सन्तान का ।।

शान्तु—(होश में आकर) अच्छा भाई यह तो बता कि हमारे पुत्र ने कैसे प्राण त्यागे हैं ?

दशरथ—सुनो ! सुनो ! दुखियाओ ! अपने पुत्र के मरने का कारण भी सुनो !

गाना

टेक—महा दुःख पाया, कहा नहीं जाय !

अन्तरा १—दैवयोग से भरमण के हित आज बनों में आया ।
होनी ने पीछा नहीं छोड़ा, ईश्वर की हुई माया ।।
कहा नहीं जाय……

२—पुत्र तुम्हारा जल लेने जब नदी किनारे धाया ।
जाना उसको पशु बनों का सीधा तीर चलाया ।।
कहीं नहीं जाय……

३—बाण लगा कारी सीने में सांस लबों पर आया ।
हा माता,हा पिता-पिता हो व्याकुल शब्द सुनाया।।
कहा नहीं जाय……

४—हा जगदीश्वर! हाय विधाता! कैसा समय दिखाया।
यह अपराध कुशल हुआ स्वामी पाप कर्म की छाया।।
कहा नहीं जाय ……

शान्तु—याद रख दशरथ ! यदि तू जल लेकर हमारे पास न आता और सच्चा हाल न बताता तो हम ऐसा शाप देते कि तेरा सर्वनाश हो जाता ! अच्छा चल ! अब हमें बेटे की लाश पर ले चल ।

दशरथ—चलिये महात्मन !

[दशरथ का दोनों को हाथ पकड़ कर ले जाना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(सरयू का किनारा)

[श्रवण की लाश पड़ी है, दशरथ दोनों को लेकर आता है]

दशरथ—लीजिये महात्मन ! यह आप के पुत्र की लाश पड़ी है।

दोनों—(लाश पर गिरकर) हाय बेटा ! तेरी यह दशा ! हम अन्धों को बीच में ही धोखा दे चला।

गाना

टेक—कैसी फूट गई तकदीर।
मन है आज अधीर-कैसी······

(१) शोक ने घेरा चिन्ता ने खाया,
कम्पित होता शरीर-कैसी······

(२) बिन तेरे अब श्रवण हमको,
कौन पिलायेगा नीर-कैसी······

(३) मन को कदापि चैन न आवे,
प्यासे ही त्याग शरीर-कैसी······

(४) जीवन की सब आशा टूटी,
अब है साँस अखीर-कैसी······

दशरथ—मात-पिता ! अधिक न कल्पाओ, दुखी मन को समझाओ। जैसे भी हो हृदय को शान्ति दो और श्रवण के बदले मुझे ही अपना पुत्र समझो।

शान्त—अरे अन्याई ! तूने जिस प्रकार हमें प्यारे पुत्र के वियोग में तड़पा-तड़पा कर मारा है, उसी प्रकार यह पाप तेरा भी पीछा न छोड़ेगा; और तू भी अपनी सन्तान के विरह में बिलख-बिलख कर दम तोड़ेगा। हाय ! श्रवण, बेटा श्रवण !

हम भी हुए समाप्त बस आशा के साथ-साथ ।
प्राणों निकल चलो अभी बेटा के साथ-साथ ।

[दोनों का प्राण त्याग देना]

दशरथ—अनर्थ ! घोर अनर्थ ! एक मृत्यु के साथ तीन मृत्यु, एक हत्या के साथ तीन हत्याओं का पाप ! अभागे दशरथ, आज यह कैसा पाप किया है ? अपने सिर पर इन निर्दोषों का शाप लिया है । हाय ! हाय ! इस पाप का प्रायश्चित्त किस प्रकार होगा ? इस शाप का निवारण कैसे किया जायगा ? हे जगदीश्वर ! आज यह कैसी माया रचाई ? तकदीर मुझे कहां खीच लाई ! शोक, महा शोक !

गान।

हाय दशरथ क्या तेरी तकदीर ने धोका दिया ।
निर्दयी जल्लाद दुनियां में तुझे रुसवा किया ।।
कर गया बरबाद घर का घर किसी निर्दोष का ।
बाण जो भूले से मैंने इस तरफ सीधा किया ।।
दीन रक्षक होके मैं घातक बना निर्दोष का ।
पाप था जो कुछ विचारा जो किया बेजा किया ।।
बनके अन्धा शाप अपने शीश पर इनका लिया ।
हा कुशल यह आप सावन नर्क का पैदा किया ।।

[दशरथ का तीनों के दाह संस्कार में लगना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(दशरथ-दरबार)

दशरथ—विधाता ! मेरे पास तेरे दयावान हाथों का दिया हुआ राज दरबार है । धन, सम्पदा और अनेक रत्नों से भरा हुआ अतुल भण्डार है, प्रत्येक छोटा-बड़ा मेरी आज्ञा का पालन करता है,

जिसको देखो वही मेरे सुख साधन के लिये मरता है। परन्तु इतना कुछ होते हुए भी मेरे मन को शान्ति नहीं। राज्य क भोग मेरी आत्मा में दीमक लगा रहे हैं। सुख और वैभव मेरे हृदय को बेचैन बना रहे हैं। मेरे विचारों में भागड़ पड़ रही है, मेरी आंखों के सामने अग्नि भड़क रही है :—

जो नहीं सन्तान तो इच्छा-नहीं धन धाम की।
भोगने वाला नहीं तो सम्पदा किस काम की॥
आंख है मौजूद लेकिन आंख का तारा नहीं।
दिल हुआ बेकार जब दिल का कोई प्यारा नहीं॥

मन्त्री—महाराज ! आज आप इतना क्यों अकुला रहे हैं ? ऐसी क्या चिन्ता है जो नेत्र डबडबा रहे हैं।

दशरथ—मन्त्री जी ! क्या बताऊं ? सन्तान हीन होने की चिन्ता चिंगारी के समान मन को जला रहा है। वृद्धावस्था की यह निराशा हृदय में क्लेश रूपी अग्नि सुलगा रही है। आप जानते हैं कि मेरा चौथापन आ गया है जीवन का भरोसा नहीं, न मालूम आयु का दीपक कब बुझ जाय ? मैं सोच रहा हूं कि क्या मेरे प्राणों के साथ सूर्यवंश भी समाप्त हो जाएगा ? क्या मेरे मिटते ही भागीरथ और हरिश्चन्द्र का नाम भी मिट जायगा ?

चमकता था जगत में आज तक भूषण रघुकुल का।
बना अफसोस मैं ही नाश का कारण रघुकुल का॥

मन्त्री—महाराज ! इतने अधीर न हूजिये; और महामुनि वशिष्ठ जी से इसका उपाय पूछिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे अवश्य कोई ऐसा उपाय बतलायेंगे जिससे आपके सब क्लेश दूर हो जाएंगे।

दशरथ—हां ठीक है ! सम्भव है कि उनकी कृपा से ही मेरा संकट दूर हो जाय :—

यह इच्छा लेके अब गुरुदेव की सेवा में जाता हूं।
जो चिंता है मेरे दिल में उन्हे जाकर सुनाता हू ।।
[दशरथ और मन्त्री का जाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(गुरु वशिष्ठ का आश्रम)

दशरथ—(आकर) गुरु जी के चरणों में यह सेवक सादर प्रणाम करता है।

वशिष्ठजी—चिरन्जीव रहो राजन्! आशायें पूर्ण हों! कहो कैसे पधारे?

दशरथ—महाराज दशरथ को बड़े क्लेश ने दबाया है। अब रघुवंश का अन्त होने को आया है। कोई दिन में मुझे संसार ऐसा भूल जाएगा, मानो यहां कभी आया ही नहीं था। प्रभो! तीन विवाह करके वेद-विरुद्ध कार्य भी कर चुका हू परन्तु मेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई :—

चली जाती है आयु क्या भरोसा प्राण का स्वामी।
नहीं देखा है मुखड़ा आज तक सन्तान का स्वामी।।
करेगा कौन चिंता लाश तक मेरी उठाने की।
चिता भी राह देखेगी उसे अग्नि लगाने की।।

गाना

मैं इस संसार से स्वामी! यों ही निष्काम जाऊंगा।
सदा के वास्ते रघुवंश को जग से मिटाऊंगा।।
मिलेगा यश कभी मुझको न इस संसार मे स्वामी।
गया परलोक तो फिर भी कलङ्कित हो के जाऊंगा।।
दिया रघुवंश के घर में कभी जलने न पाएगा।
मैं इस फूले-फले घर-बार को निर्जन बनाऊंगा।।
मिटेगा नाम दुनियां से भागीरथ, अज, हरिश्चन्द्र का।

मैं सारी कीर्ति ही हे कुशल कुल की मिटाऊंगा ।।

वशिष्ठजी – हे राजन् । संसार में सुख के बाद दुख, और दुख के बाद सुख आया करता है । शान्ति के बाद अशान्ति और अशान्ति के बाद शांति हुआ करती है । घबराने की कोई बात नहीं, भगवान की बाहें बहुत लम्बी हैं । वे तुम पर अवश्य कृपा करेंगे :—

मेरा मन कह रहा है पूर्ण यह आशा दिली होगी ।
वह दिन आने ही वाला है कलो मन को खिली होगी ।।

गाना

न कर शोक दशरथ तू क्यों रो रहा है ।
तेरे कष्ट का यत्न भी हो रहा है ।।
करगे दया तुझ पे करुणा के सागर ।
निराशा में क्यों प्राण तू खो रहा है ।।
समय आ गया है मिटेगी यह चिन्ता ।
तेरा भाग्य-दिनकर उदय हो रहा है ।।
वही काम कर जो बताऊं कुशल मैं ।
जगेगा नसीब जा अब सो रहा है ।।

दशरथ—बतलाइये ! महामुनि ! ऐसा उपाय शीघ्र ही बतलाइये !

वशिष्ठजी—हे राजन सुनो ! किसी प्रकार शृंगी ऋषि को बुलवाओ और उनके द्वारा पुत्रेष्ट यज्ञ कराओ ।

दशरथ—जो आज्ञा महाराज ! (मन्त्री से) मन्त्री जी ! आप चले जाइये और अपने गुण में निपुण अप्सराओं को भेज कर शृंगी ऋषि को बुलवाइये ।

मन्त्री—जैसी आज्ञा श्रीमान !

[मन्त्री का जाना परदा गिरना]

दृश्य नवां

(परदा जंगल)

[शृंगी ऋषि एक वृक्ष पर उलटे लटके हुए तपस्या कर रहे हैं, दो अप्सरायें आकर नाच रंग दिखाती हैं।]

अप्सराएं— **गाना** (तर्ज—ला पिलादे भर भर साकी)

नैन चलाएँ बाण तान कर अबरू गजब कटारियां...... नैन
मस्तानी—हुई दिवानी
जान; अजान; महा आ-आ-आ ......नैन
नजर मिला के चल दिए मैं देखती रही।
सीने पै तीर चल गए उनकी हंसी रही ॥
मस्तानी—हुई दिवानी
जान; अजान; महा आ-आ-आ ......नैन

अप्सरा नं० (१)—अरी! यह मुनि तो बोलते भी नहीं।

अप्सरा नं० (२)—बहिन! इन्हें जरा रूप का झलक दिखाओ और कोई और सुन्दर राग सुनाओ।

गाना

टेक—कैसा लागा ध्यान-मुनि जी कैसा लागा ध्यान।
सुध बुध कुछ दुनियां की नहीं; चिंता शोक नहीं मन माहीं
क्या-क्या होत बखान-मुनिजी-कैसा लागा...ध्या...अ...आन
टुक देखो इक नजर उठाकर-रूप लखो यह ध्यान भुला कर
अनुपम रूप महान-मुनि जी-कैसा लागा ......
विधना ने संसार बनाया कुशल रचो है अनुपम माया
कुछ तो कीजे ज्ञान-मुनि जी-कैसा लागा......

[शृंगी ऋषि का वृक्ष से उतर कर अप्सराओं के पीछे चलना, परदा गिरना।]

दृश्य दसवां

(दशरथ दरबार)

[अप्सराओं का शृंगी ऋषि सहित आना और छोड़कर चले जाना]

दशरथ—(खड़े होकर) ऋषिराज के चरणों में दशरथ का प्रणाम !

शृंगी ऋषि—चिरंजीव रहो राजन् ! कहो यह ढोंग किस लिए रचाया है और हमें यहां क्यों बुलाया है ?

दशरथ—महात्मन् ! मेरा संकट आप के बिना दूर नहीं हो सकता; मैं आप से अनुग्रह की भीख मांगता हूं। हे प्रभो ! मुझ पर इतनी कृपा कीजिये कि मेरे हित के लिए पुत्रेष्ट यज्ञ करा दीजिए।

वशिष्ठजी—ऋषि राज ! दशरथ सन्तान हीन होने के कारण महा दुखी है। रघुवंश की कीर्ति नष्ट होने जा रही है। इतनी कृपा कीजिए कि पुत्रेष्ट यज्ञ कराकर सूर्यवंश को नष्ट होने से बचा लीजिए।

शृंगी ऋषि—वशिष्ठ जी ! मुझे आज्ञा स्वीकार है। हवन की सामग्री मंगाइये और यज्ञ का मंडप सजाइये।

दशरथ—महाराज ! पहले से ही सब कुछ हो चुका है केवल आपकी कृपा की देर है।

[दशरथ का सबके सहित यज्ञ-मण्डप में जाना, यज्ञ होना और अग्नि-देव के दर्शन]

अग्निदेव—(प्रकट होकर और चरू देकर)

राजन महा प्रसन्नता मन में भई है आज।
करुणा से गुरुदेव की पूरे हों सब काज ॥
राज-रानियों को अभी दीजो चरू खिलाय।
देता हूं तुमको वचन मन वांछित फल खाये।

[अग्निदेव का अन्तर्धान होना, दशरथ का चरू लेकर महल में जाना परदा गिरना]

दृश्य ग्याहरवां

परदा महल (प्लाट)

[कौशल्या दर्द से बेचैन है]

कौशल्या—कृपा करो ! हे भगवान कृपा करो ।

करो भरपूर मेरो गोद, अब संकट हरो स्वामी ।
बहुत कुछ हो चुकी बेचैन बस करुणा करो स्वामी ।।

[प्लाट का फटना और चतुर्भुजी भगवान का दर्शन]

विष्णु भगवान— देख माता ! आज तेरी आशाओ की पूर्ति का दिन है । सावधान हो और देख !

कौशल्या—देखूं ? किस प्रकार देखूं ? हे नाथ ! इन धुंधली आंखों में आपकी अनुपम छवि किस प्रकार देखू ।

गाना

पाया नहीं है भगवान माया का पार तेरी ।
करते हैं बन्दना जन-सुर बार-बार तेरी ।।
सुन्दर विशाल लोचन बनमाल कठ में है ।
वेद और पुराण निश दिन करते पुकार तेरी ।।
प्रकटे हो हित के कारण भक्तों के भक्तवत्सल ।
विख्यात है जगत में महिमा अपार तेरी ।।
बालक का रूप बनकर लीला दिखाओ स्वामी ।
जाती नहीं है देखी सूरत अपार तेरी ।।

हे अनन्त भगवान ! मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करू ? आप दया और गुणों के समुद्र हैं । माया से रचे हुए अनेक ब्रह्मांड आपके रोम-रोम में रमे हुए हैं ।

नहीं आता किसी के ध्यान में विस्तार माया का ।
रचा है आपने अद्भुत प्रभो संसार माया का ।।
तुम्हीं बस जानते हो नाथ केवल अपने भेदों का ;

सुना है नेति नेति कहते आखिरकार वेदों को ।।

विष्णु भगवान— गाना

(लावनी)

दोहा—कौशल्या माता सुनो ! अब इक सत्य विचार ।
वचनों के कारण किया धारण यह अवतार ।।
जो पूर्व जन्म में बीता है सम्भव हैं तुमको ध्यान नहीं ।
तुम सतरूपा कहलाती थीं जिसका अब तुमको ज्ञान नहीं।
थे शम्भुमनु तेजस्वी सब बलवान जो स्वामी तुम्हारे थे ।
वे न्यायशाली कहलाते थे और जनता के अतिप्यारे थे ।।
संसार असार समझकर तुम संसार का पल में छोड़ चले ।
बनखंड में जाकर तप किया संसार से मुंहको मोड़ चले ।।
जब हुई तपस्या पूर्ण तो मैं दर्शन तुमको देने आया ।
मांगा-मांगा क्या इच्छा है,लेला जो कुछ मन का भाया ।।

दोहा—हाथ जोड़ विनती करी तुमने हे भगवान ।
पुत्र हमें इक दीजिए गुण में आप समान ।।
वचनों के कारण दिया दर्शन यह इकवार ।
अब बालक बनकर करूं लीला अपरम पार ।।

[अन्तर्धान हो जाना बालक के रोने की आवाज आना परदा गिरना]

दृश्य बारहवां

(दशरथ दरबार)

[दरबार लगा हुआ है, दासी आकर पुत्रों के जन्म का समाचार देती है]

दासी— गाना

विधाता ने तुम्हें राजन खुशी का दिन दिखाया है ।
मुकद्दर बाद मुद्दत के तुम्हारा रंग लाया है ।।
मिटे हैं कष्ट सब मन के हुई हैं पूरी आशाएं ।
महा आनन्द तीनों राज—महलों में समाया है ।।

हुए हैं चार सुखपंदा अनोखी शुभ घड़ी आई।
नगर को आज इस उत्साह ने सुरपुर बनाया है।।
फल फूलें रहें आनन्द ये सुकुमार दुनिया में।
कुशल ने हर्ष और आनन्द में यह राग गाया है।।

दशरथ—अहा देव! तुम बड़े न्यायशाली हो, तुम्हारी बाहें बहुत लम्बी हैं; तुम्हारे भंडार में किसी वस्तु की कमी नहीं। तुम्हारी कृपा से आज मैं भी संसार में बसने योग्य हो गया; आज मेरे अंधेरे महल में भी प्रकाश दिखाई पड़ने लगा; तुम धन्य हो! तुम धन्य हो—

सुनी तुमने ही आखिरकार यह फरियाद सेवक की।
जगत में रह गई बाकी प्रभो अब याद सेवक की।।

मन्त्री—निस्सन्देह महाराज! आज का दिन आप के लिये, हमारे लिए और समस्त प्रजा के लिए बड़ा ही शुभ दिन है।

दशरथ—मन्त्री जी! ब्राह्मणों को धन और वस्त्र आदि का दान कराओ, नगर में आनन्द के रंग जमाओ, प्रत्येक गली कूचे में पताका और बन्दरवार बन्धवाओ। दीन भिखारी जो आयें मुंह मांगी मुराद पायें। राज्य के समस्त कर्मचारियों को उन्नति दी जाय और घर-घर में रोशनी की जाए।

मन्त्री—महाराज! आपकी आज्ञा का यथार्थ रूप से पालन किया जाएगा!

दशरथ—ठीक है! अच्छा अब मैं गुरुदेव की सेवा में जाता हूं और बालकों का नाम करण संस्कार कराता हूं।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य तेहरवां

(परदा—महल)

[चारों राजकुमार पालने में झूल रहे हैं, दशरथ गुरु वशिष्ठ सहित आते हैं]

दशरथ—गुरुदेव ! यह सब आपकी ही कृपा का फल है जो भगवान ने मुझे चार पुत्र दिये हैं। कृपा करके इनका नाम करण संस्कार करा दीजिए।

वशिष्ठजी—हे राजन, तुम बड़े भाग्यशाली हो। भगवान ने तुम्हें अलौकिक पुत्र-रत्न दिये हैं। इनके नाम भी अनेक और उपमा रहित हैं; परन्तु फिर भी मैं अपनी बुद्धि अनुसार विचार कर कहता हूं। ये जो आनंद के समुद्र और सृष्टि के प्रत्येक परमाणु में रमण करने वाले हैं इनका नाम राम होना उचित है। ये जो सब जगत का पोषण और भरण करने वाले हैं इनका नाम भरत होना चाहिये। और जिनको स्मरण करने से ही शत्रुओं का नाश होता है वे शत्रुघन तथा जो अच्छे लक्षणों के स्थान और राम के प्यारे हैं उनका नाम लक्ष्मण प्रसिद्ध होने योग्य है।

दशरथ—धन्य हो प्रभो !

[दशरथ और वशिष्ठजी का जाना, बधाई वाली स्त्रियों का आना और गाना]

गाना

आई है कैसी बाहर अजी देखो—देखो।
रेशम की डोरियों में झूले पड़े हैं।
झूले हैं राजकुमार—अजी देखो……
आशा विधाता ने मनकी की है पूरी
जीवें सदा सुकुमार—अजी देखो……
महल अटारी फूल सजावें।
गावें बधाई नत द्वार—अजी देखो……

[गाना-बजाना होना, दृश्य-परिवर्तन पर नगर में सजावट और रोशनी का दिखाई देना आरती पर ड्रापसीन]

चौथा अंक

दृश्य पहला

(परदा जंगल)

[राक्षसों का उत्पात]

गाना (तर्ज—मेरे मौला बुलाले)

टेक—कोई दुनियां में मानो हमारा नहीं।

मारीच—ससार मेरे हुक्म पं चलता है रात-दिन ॥
रहती है मौज बारह महीने व सात दिन ॥
हम ने रजो ग्रलम तो सहारा नहीं-कोई······

सुबाहु—मेरी तो वीरता ही निराली जनाब है।
ग्रांखं मिलाए हम से कुशल किस की ताब है ॥
मेरी शक्ति के ग्रागे इजारा नहीं—कोई······

मारीच—मंसार का कोई मूर्ख राजा घर बैठकर ही ग्रपनो ग्राज्ञा चलाता है ग्रौर कोई ग्रपनी सोमा में ग्रातक जमाता है; परन्तु हमारी सरकार भूमण्डल के सभी भागों पर चलती है ग्रौर हमारा नाम सुनते ही बड़े-बड़े वोरों की छाती दहलती हैं। हमारे सामने ग्राते ही शेरों की काया धड़कती है ग्रौर काल की नस फड़कती है।

सुबाहु-क्यों नहीं! ग्राज ससार में हम जंसा कोई वीर नहीं; जो हमारे पराक्रम से न डरता हो ऐसा कोई धीर नहीं।

राक्षस १—बिल्कुल ठीक! (बोतल दिखाकर) यह सब इस रंगीन

पानी का असर है कि जिसने एक बार पी पिला उसका सारी दुनियां को डर है ।

मारीच—हां-हां लाओ-लाओ ! सब एक-एक बोतल चढाओ !

सुबाहु—अरे एक बोतल में क्या होता है ? यहां तो दो चार मटकों में भी कुछ ही भला होता है ।

राक्षस २—अरे सारी तुम ही चढ़ा जाओगे तो हमें क्या खाक पिलाओगे ।

[सबका मदिरा पीना और गाना]

गाना (तर्ज—मन मैल मिटे···)

भर जाम पियो, सरशार बनो, है प्याला सबसे आला ।
जब रंग जरा जम जावे, दुख दर्द पास नहीं आवें,
दुनियां जन्नत बन जावे ;
खता औसान, नहीं पहचान, बने हैरान, महा मस्ती मतवाला
भर जाम······

मारीच—अरे, अब यहां बैठे-बैठे प्याले ही चढ़ाओगे ? या कुछ इधर-उधर की घातें भी लगाओगे ?

राक्षस ४—हां-हां कहो कहो क्या विचार है ? क्या कोई नया शिकार है ?

मारीच—चलो अब जरा इधर-उधर चक्कर लगाएंगे और कोई नई चिड़िया जाल मे फंसाएंगे ।

राक्षस—तो फिर चलिए किधर का इरादा है ?

सुबाहु—वह देखो सामने की ओर धुआं उड़ता नजर आ रहा है, मालूम होता है कि कोई मूर्ख तपस्वी यज्ञ रचा रहा है । चलो जरा उसी ओर चक्कर लगाए और उस पाखण्डी को मूर्ख बनायें ।

सब—हां-हां चलो, चलो !

[सबका जाना, दृश्य-परिवर्तन पर मुनि विश्वामित्र का यज्ञ करते नजर आना]

राक्षस—(हंस कर) वाह ! वाह ! अच्छे रहे; सबसे पहले बूढ़े बाबा के ही दर्शन हुए।

सुबाहु—अरे पहले इनकी कुशल मगल तो पूछ लो !

राक्षस—क्यों बाबा ! चित्त तो प्रसन्न है ? यह धूनो किसो लिए लो जा रही है ? क्या सिर पर कोई भूत चढ़ गया है ।

मारीच—ओ हो ! बड़े मौनधारो मुनि हैं ! बोलते भी नहीं; चुप्पी साधे बैठे हैं ।

राक्षस—आखिर इस पर क्या भूत सवार है जो इसे बोलना भी दुश्वार है ।

राक्षस २—अरे भाई ! बेचारा बहुत दिनों का बीमार है इसलिए जबान हिलाने से भी लाचार है ।

मारीच—क्यों बुड्ढे बाबा ! ऐसी क्या धुन समाई है जो हमारी ओर अब तक आंख भी नहीं उठाई है !

राक्षस १—ओहो ! इतने नखरे तो परी भी नहीं करती ।

सुबाहु—अरे गुरु घण्टाल ! कुछ तो बोल चाल, हमें तो तेरी दाढ़ी पर बड़ो दया आती है. भोली भाली सूरत मन को बहुत भाति है, सच बता क्या तुझे भी शराब चाहती है ।

राक्षस १—बस-बस ! बिलकुल यही बात है । लाओ-लाओ एक आध बोतल इसे भी पिलाओ ।

राक्षस २—लो बाबा ! तुम भी इस लाल परी को मुंह लगाओ ! (बोतल आगे करना)

मारीच—अरे ! बोल-बोल ! जरा तो मुंह खोल ! हटा, हटा यह क्या लिये बैठा है? इसे सामने से उठा! (हवन कुंड फैंक देना)

राक्षस ४—(सामग्री उठाकर और सूंघकर) इसमें क्या है भोले बाबा ! ओह बड़ी दुर्गन्धि आ रहो है जो नाक में चढ़ी जा रही है (फेंक देना) ।

सुबाहु—(कन्धे हिलाकर) बोल-बोल, अब तो आंखें खोल !

[विश्वामित्र का क्रोध में उठना]

विश्वामित्र—दुराचारियो ! इतना अन्याय ! इतना पाप ! साधुओं को भी तंग करने लगे ; ऋषियों और मुनियों के यज्ञ भी भंग करने लगे :—

किया है इस कदर पाखण्ड का व्यवहार दुनियां में ।
लगे करने यहां तक घोर अत्याचार दुनियां में ।।
हुई बेबस तो इस सन्ताप से व्याकुल प्रजा सारी ।
परन्तु सन्त पुरुषों की भी अब आने लगी बारी ।।

[राक्षसों का भाग जाना]

गाना (तर्ज – रचा क्या बहार तूने···)

कैसी हवा चली यह कलियां बनी शरारे,
मद्धम पड़े हैं देखो आकाश के सितारे ।
अग्नी का रूप है जल, अमृत बना हलाहल,
लगते हैं फूल कोमल, जलते हुए अंगारे ।
दुष्कर्म में समोया, निन्द्रा में धर्म सोया,
पापों ने जग डबोया, आशा खड़ी पुकारे ।
दुनिया लगी बदलने, साहस लगा पिघलने,
नया लगा मचलने, हटने लगे किनारे ।

(स्वयं) अब इन दुष्टों के नाश का उपाय करना भी परम आवश्यक हो गया है । यदि इन का अन्त न होगा तो ऋषि लोग महादुख पाएंगे महात्माओं को यज्ञ करने दुर्लभ हो जाएंगे । जगदीश्वर की कृपा और योगबल की शक्ति से इन को मैं भी नष्ट कर सकता हूं परन्तु क्रोधित होने में मेरा आत्मबल क्षीण होता है । इसलिये कोई ऐसा सहज उपाय करना चाहिये कि इन दुराचारियों का भी दलन हो जाए और मेरी तपस्या में भी विघ्न न आए (विचार करके) हां, ज्ञान द्वारा सिद्ध हुआ कि सूर्यवंश में निर्गुण ब्रह्म का अवतार

हो चुका है। भगवान का अवतारी रूप दुष्टों के हनन और सन्तजनों के रञ्जन के लिये ही हुआ करता है, इसलिये यही उचित है कि महाराज दशरथ के पास जाकर भगवान राम और लक्ष्मण का मांग लाऊं। उनके शुभ दर्शन से मैं भी कृतार्थ हूंगा और ये दुष्ट राक्षस भी सहज में ही नष्ट हो जाएंगे:—

अभी जाकर रघुकुल का मैं द्वारा खटखटाता हूं।
अभी जाकर महाराजा को दुख अपना सुनता हूं।।
मिटेगी मन की चिन्ता और जन-उद्धार भी होगा।
हनन दुष्टों का होगा धर्म का उपकार भी होगा।।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

दशरथ—दरबार

[दशरथ अपने मन्त्रियों, चारों पुत्रों तथा अन्य कर्मचारियों सहित विराजमान हैं)

दशरथ—तुही रक्षक तुही पालक तुही करतार दुनियां का।
तेरे आधार पर चलता है सब व्यवहार दुनियां का।।
सदा से है तू ही संकट का मेटनहार दुनिया का।
किया है आज तक तूने ही बस उपकार दुनिया का।।
तुही दुख दर्द नाशक है तुही दीनों का पालक है।
तुही है आस निर्बल की तुही प्राणों का रक्षक है।।

मन्त्री—सत्य विचार है महाराज!:—
वही बन्धु, सखा, स्वामी, उसी का सच्चा नाता है।
जगत को जो भी मिलता है उसी के घर से आता है।

दशरथ—अच्छा सारे कर्मचारी अपना-अपना ब्योरा सुनावें।

मन्त्री—महाराज:—
उम्र आराम से जनता की बसर होती है।
दीन दुखिया की बड़ सुख में गुजर होती है।।

कर्म शुभ होते हैं और कोई बुरा काम नहीं।
राज्य में आप के सकट का जरा नाम नहीं॥

महाराज! समस्त प्रजा बड़े आनन्द में दिन विता रही है; राज्य के शुभ कर्मों और नीति पालन को देखकर सतयुग को याद आ रहा है। किसी को अधिकारों से वंचित नहीं किया जाता है। प्रत्येक के साथ न्याय का व्यवहार किया जाता है।

सेनापति—महाराज की सारी सेना राज्य के लिये जान देने को तैयार है, हर एक सैनिक पूरा आज्ञा कार है।

कोषाधारी—कोष कुबेर के भण्डार के समान भर-पूर है, आय और व्यय का लेखा सब प्रकार अनुकूल है।

भूमि प्रबन्धक—कृषक लोग निश्चन्त होकर अपना काम कर रहे हैं और राज्य-सेवा का दम भर रहे हैं। सरकारी कर बड़ी सावधानी और नर्मी से प्राप्त किया जाता है, प्रत्येक को पूरा-पूरा आराम दिया जाता है।

कोतवाल—समस्त प्रजा के लिये पूरी आसानी है; बच्चे-बच्चे के मुख पर महाराज के न्याय की कहानी है। चोर, उचक्के और डाकू का नाम नहीं; लूटमार और उपद्रव का कहीं काम नहीं।

दशरथ—बहुत सुन्दर! अच्छा सन्तान-प्राप्ति के उपलक्ष में सारे कर्मचारियों को इनाम दिया जाए और जो सवाली आए उसके सवाल को बिना रोक टोक पूरा किया जाए।

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज!

कोषाधारी—

दर खुला है आज तो यह मांग ले आकर कोई।
पाएगा मन को मुरादें आज बेशक हर कोई॥

भिखारी (१)—(कन्या के साथ आना)

दीन दुखिया ब्राह्मण हूं और यह कन्या मेरी।

रात-दिन रहती है चिन्ता ब्याह की इसके बड़ी ।।
आप की करुणा से बेड़ा पार होगा दीन का ।
दीजिये कुछ धन मुझ उद्धार होगा दीन का ।।

भिखारी (२)—

गिर गया घर सारा राजन, हाय इस भौचाल में ।
आ पड़ी सिर पर मुसीबत फंस गया जंजाल में ।।
एक दाना भी नहीं है हाय खाने के लिये ।
किस जगह मैं जाऊं अब जीवन बिताने के लिये ।।

भिखारी (३)—

कुछ न पूछो हाल राजन् ! हाय इस लाचार का ।
पड़ गया डाका लूटा सामान कुल घर बार का ।।
अब ठिकाना भी नहीं है हो रहा बे हाल हूं ।
दीजिये कुछ धन मुझे निर्धन, दुखी, कंगाल हूं ।।

भिखारी (४)—

क्या बताऊं किस तरह मेरा सफाया हो गया ।
फाटके में घर तलक अपना पराया हो गया ।।
पास अपने बैठने मुझको कोई देता नहीं ।
नाम भी इज्जत से मेरा अब कोई लेता नहीं ।।

[सब भिखारियों का बारी बारी धन लेकर जाना]

द्वारपाल—(सिर झुकाकर)

दुनिया में महाराज का बढ़े सदा इकबाल ।
सदा समागम हर्ष का जनता रहे निहाल ।।
दैवयोग से आए हैं विश्वामित्र कृपाल ।
द्वारे पर आसन जमा बैठ गए महिपाल ।।
कुछ बिगड़े आते नजर चेहरे के आसार ।
क्रोधित से लगते प्रभो ! नेत्र हुए अंगार ।।
आज अनोखी है दशा कुछ वरणी नहीं जाय ।

आज्ञा हो जो दास को लावे अभी बजाय ।।

दशरथ—ओहो ! क्या महर्षि विश्वामित्र जी पधारे हैं !

द्वारपाल—हां महाराज !

दशरथ—तो मन्त्री जी ! आप शीघ्र ही जाइये और उन्हें आदर सहित ले आइये ।

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज !

[मन्त्री का जाना और विश्वामित्र सहित आना]

दशरथ—(सिंहासन से उतर कर और प्रणाम करके) ऋषिराज के चरणों में सादर प्रणाम !

विश्वामित्र—चिरन्जीव रहो ! कल्याण हो

दशरथ—बतलाइये, महाराज ! सेवक के लिये कोई सेवा बतलाइये!

गाना

हे राजऋषि ! क्या कारण है ? क्यों अकुलाए से आये हो ?
क्यों रंगत है फीकी मुख की, क्यों क्रोधित हो गरमाये हो ?
किस शोक ने शोक दिया स्वामी! किस दुख के कारण हो व्याकुल ?
किस बात की चिन्ता मन में है ? क्यों शील-भाव बिसराये हो?
मैं दास सदा से चरणों का हूं आज्ञाकार कहो स्वामी !
किस दुष्ट ने तुमको कष्ट दिया ? क्या इच्छा लेकर आये हो?
क्या दुष्टाचार बढ़ा स्वामी ? क्या मानुष पापाचारी बने ?
भरते हो लम्बे सांस प्रभो ! क्यों चिन्तित हो घबराये हो ?

विश्वामित्र— **गाना**

हो राजऋषि या ब्रह्म ऋषि या ज्ञानी धूल रमाये हो ।
तुम राज के मद में फूले हो तुम माया में भरमाये हो ।।
घन गर्जन है सन्तापों का, तूफान चढ़ा है पापों का ।
तुम महल में सोने वाले हो तुम वैभव में हर्षाये हो ।।
क्या घोर भयंकर रजनी है, क्या सन्त जनों पर बीती है ।
तुम को तो चिन्ता अपनी है तुम जनता को बिसराये हो।।

दशरथ—नहीं ऋषिराज, आप निराश न हों। दशरथ अपना कर्तव्य नहीं भूला है। आप का यह सेवक तनिक भी राजमद में नहीं फूला है। बस महाराज—

न कुछ मन में करो चिन्ता, न दम ठण्डे भरो स्वामी।
खड़ा है दास चरणों में इसे आज्ञा करो स्वामी॥

विश्वामित्र—राजन्! तुम जानते हो कि हम सन्यासी लोग वनों में अपना जीवन बिताते हैं, निर्जन स्थान और पर्वतों की कन्दराओं में जाकर यज्ञ और हवन रचाते हैं। परन्तु मारीच, सुबाहु आदि राक्षस हमें वहां भी सताते हैं, हमारा किया कराया सब भ्रष्ट कर जाते हैं—

नहीं करते हैं पापी ध्यान जप-तप और पूजा का।
हमारे सामने आकर हैं करते पान मदिरा का॥
हवन के कुण्ड में दुर्गन्धियां तक डाल जाते हैं।
जहां हम यज्ञ करते हैं वहां ऊधम मचाते हैं॥

गाना

सुनायें क्या तुम्हें राजन्! कि दुष्टों के सताये हैं।
दुखी होकर तेरे दरबार में फरियाद लाये हैं॥
हुए लाचार सन्यासी, सताते हैं हमें पापी।
बढ़ा अन्याय ऐसा, तग हम जीवन से आये हैं॥
हमें अब यज्ञ जप, तप का भी करना हो गया दुर्लभ।
महा अन्याइयों ने हाय ऐसे जुल्म ढाये हैं॥
दशा बिगड़ी है सन्तम की करो रक्षा ऋषिजन की।
मिटाओ पीर अब मन की,कुशल अरदास लायें हैं॥

दशरथ—शोक! महा शोक!

राज्य में जब इस तरह अन्याय का व्यवहार है।
जिन्दगी पर फिर मेरी धिक्कार है धिक्कार है॥

गाना

(तर्ज—तेरी करनी कुटिल माता)

टेक—महा व्याकुल बनाया है-जो यह वर्णन सुनाया है।

अन्तरा—(१) मेरे होते राज्य में दुखी सन्त-सन्तान।
धिक जीवन, धिक-धिक मेरा सिंहासन-अभिमान॥
कलंकित कुल बनाया है-जो यह वर्णन……

(२) दुष्टों! इतना पाप और इतना बल-अभिमान।
समय तुम्हारे अन्त का निश्चय पहुंचा आन॥
ऋषिजन को सताया है-जो यह वर्णन……

(३) जीवन पर मेरे सदा थूकें तीनों लोक।
सन्तजनों को कष्ट हो शोक-शोक, अति शोक॥
यह होनी ने दिखाया है-जो यह वर्णन……

(४) ऋषिराज आज्ञा करो, है सेवक तैयार।
इच्छा हो जो प्राण की नहीं मुझे इन्कार॥
तुम्हारी ही तो माया है—जो यह वर्णन……

बस ऋषिराज! अब नहीं सहा जाता! अन्याइयों का पाप अब नहीं सुना जाता। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आपके हित के लिये हर उचित काम करूंगा, उन दुष्टों का अन्त करके ही आराम करूंगा :—

मेरा कर्त्तव्य है पहला ऋषि की आन की रक्षा।
करूंगा प्राण देकर भी तुम्हारे मान की रक्षा॥

विश्वामित्र—धन्य हो राजन्! संसार को तुम जैसे ही धर्मज्ञ राजाओं की आवश्यकता है। परन्तु इस कार्य के लिये तुम्हारा कष्ट उठाना आवश्यक नहीं। हमारे हित के लिए केवल इतना कीजिये कि राम-लक्ष्मण को हमारे संग कर दीजिये। इनके द्वारा हमारा सब कार्य सिद्ध हो जायगा और तुम्हारा यश संसार में अमर पदवी पायेगा :—

करेंगे हर तरह दोनों यही उद्धार दीनों का।
करो इस भाँति करना है यदि उपकार दीनों का।।

[दशरथ का चिन्ता में पड़ जाना]

विश्वामित्र—बोलो राजन्! अब क्या कहते हो? क्या राम-लक्ष्मण को देने में कोई सकोच है?

[दशरथ फिर चुप रहते हैं]

विश्वामित्र—क्यों! चुप क्यों हो गये? क्या रघुकुल ने भी अपना कर्त्तव्य-पालन छोड़ दिया? क्या सूर्यवंश के सूर्य ने भी प्रजा की रक्षा से मुंह मोड़ लिया, आखिर कारण क्या है? तुम बोलते भी क्यों नहीं?

दशरथ—महाराज!

[फिर चुप हो जाना]

विश्वामित्र—कहो! क्या बात है? हम विनती कर रहे हैं और तुम टाल रहे हो। हम प्रार्थना करते जाते हैं और तुम कानों पर ढाल रहे हो। ठीक है, हमारा कुछ जोर नहीं है, हम दबाव नहीं दे सकते:—

तुम्हें चिन्ता ही क्या है मार दुख की सन्तजन में हो।
बला से मांस और मदिरा हमारे यज्ञ-हवन में हो।।
तुम्हें आराम प्यारा है, तुम्हें है मोह माया का।
सुनो फिर कौन से कानों से तुम दुख दर्द जनता का।।

दशरथ—ऋषिराज! यह आप क्या कहने लगे? कृपा करके जरा विचार तो कर लीजिये, इन बालकों की अवस्था देखकर आज्ञा कीजिये।

गाना

कुछ कीजिये स्वामी दया, बालक हैं ये अनजान हैं।
इस वृद्ध का हैं आसरा इस देह के ये प्राण हैं।।
चलता हूं सेवा के लिये, जो चाहो आज्ञा कीजिये।

इनको क्षमा कर दीजिये, बच्चे हैं ये नादान हैं।।
वन का चलन देखा नहीं, बाहर कदम रक्खा नहीं।
कोमल हैं ये योद्धा नहीं, वे राक्षस बलवान हैं।।
धन माल के भण्डार भी, सुख सम्पदा घर-बार भी।
यह राज भी दरबार भी, चरणों में सब बलिदान हैं।।

महाराज क्षमा कीजिये! राम-लक्ष्मण अभी साधारण बालक हैं। जब उन भयंकर राक्षसों को देखेंगे तो डर जायेंगे भला उस घोर संग्राम में कैसे विजय पायेंगे? कृपा करके ऐसा न कीजिये और सेवक को ही साथ चलने की आज्ञा दीजिए—

नहीं होगा किसी कारण प्रभो! इन्कार आज्ञा में।
करूंगा प्राण भी बलिदान मैं सन्तों की सेवा में।।
करो उपकार इतना मत कहो ऐसे वचन स्वामी।
करूंगा किस तरह मैं शोक पुत्रों का सहन स्वामी।।

विश्वामित्र—हां, प्रतीत हुआ कि तुम निपट संसारियों जैसी कायरता करते हो, जो मोह के फन्दे में फंसकर कर्त्तव्य से नीचे गिरते हो। राजन्! तुम राम-लक्ष्मण को साधारण बालक जानते हो और उन्हें अपना पुत्र करके मानते हो। परन्तु यह नहीं समझते कि निर्गुण ब्रह्म ने दुष्टों का नाश करने के लिये सगुण रूप धारण किया है, सन्तों को सुख देने के लिये ही रघुवंश का नाम प्रकाशित किया है। उनके गुणों का वर्णन करना ऐसा है जैसा सूर्य को मुट्ठी में छिपाना, समुद्र का आचमन कर जाना। जिस प्रकार आत्मा अपनी इच्छा से देह धारण करती है उसी प्रकार सर्वव्यापी ब्रह्म अपनी सबल इच्छा से धर्म-रक्षा के लिये सगुण अवतार किया करते हैं:—

जिन्हें कहते हो तुम बालक, बड़े अद्भुत वे बालक हैं।
समझते हो जिन्हें तुम पुत्र वे सृष्टि के पालक हैं।।
बंधा है उनकी आज्ञा में सकल व्यवहार दुनियां का।
उन्हीं के आसरे चलता है कारोबार दुनियां का।।

दशरथ—ऋषिराज ! आप का यह हितकारी उपदेश ममता के मार्ग में निष्फल होता है, इसीलिये मोह का पराक्रम दृढ़ और निश्चल होता है ।

गाना

टेक—मेरे जीवन का आधार, स्वामी दोनों राजदुलारे ।
अन्तरा (१)—बन की नहीं देखी है रीत, दोनों हो जाये भयभीत ।
यह क्या करते हो अनुरीत, सेवक शीश चरण पर वारे ।।
(२)—विनती सुनो मेरी इक बार, दोनों हैं कोमल सुकुमार ।
बनके राक्षस है बदकार, पापी दुष्ट, महा हत्यारे ।।
(३)—दोनों पुत्र है दोनो नैन, इन बिन तडफूंगा दिन-रैन ।
घर मे बैठ करूं मैं चैन, बन में फिरें ये मारे-मारे ।।
(४)—स्वामी कह दीजे इकबार, सन्मुख खड़ा है आज्ञाकार ।
मैं हूं चलने को तैयार, खोदूं संकट और दुख सारे ।।

विश्वामित्र—(क्रोधित होकर) फिर वही बात फिर वही कायरता ! राजन क्या सूर्य वंश की रीति इसी प्रकार निभाते हो ? क्या ममता और मोह में फंस कर ही संसार में यश पाना चाहते हो? क्या महाराज दिलीप के गौरव और भागीरथ की मर्यादा का यही पालन है ? क्या हरीशचन्द्र के सत्य और रघु के यश का यही उदाहरण है ? इसी निर्बल हृदय से प्रजा की रक्षा का भार उठाया है ? क्या साधु सेवा और धर्म पालन का झूठा ही आडम्बर रचाया है । बस-बस रहने दो ।

देख ली अब क्षत्रियों के मन में है कितनी दया !
कितना कुल अभिमान है और कितना साहस, वीरता!
है भली बस दूर से ही यह कहानी दूर की ।
ढोल की आवाज है केवल सुहानी दूर की ।।

दशरथ—क्षमा ! ऋषिराज क्षमा !

विश्वामित्र—बस राजन ! अब सतयुग बीत गया । धर्म, रक्षा और

सन्त-सेवा का समय अब कहां ? सोचो ! राजा शिवि ने एक पक्षी को रक्षा के लिये अपना मांस तोल दिया था, राजा दिलीप ने एक दीन गऊ को बचाने के लिये सिंह का अहार बनना स्वीकार कर लिया था, परन्तु अब वह समय गया बीता हुआ, अब ता नाम के राजा रह गये हैं, उनमें दया और परोपकार ढूढना अपने आप को धोका देना है। अच्छा आनन्द रहो हमारा भी परमात्मा रक्षक है। यह हाथी घोड़े, पल्टन और रिसाले हमारे किसी काम के नहीं, हमारा जो तात्पर्य था वह निष्फल हो गया। अच्छा कल्याण हो ! हम जाते हैं।

वशिष्ठ—(रोक कर) ठहरिये महात्मन ! जरा और ठहरिये। राजा मोह [illegible] होकर अपना कर्त्तव्य भूल रहे हैं, इन्हें एक बार फिर सोच लेने दीजिये। (दशरथ से) राजन् ! यह समय मोह में पड़ने का नहीं है, यह अवसर चिन्ता में उलझने का नहीं है। महर्षि विश्वामित्र को अपने द्वार से निराश न जाने दीजिये, जिस प्रकार हो सके इनकी इच्छा को पूर्ण कीजिये, जो ससार के क्लेशों को दूर करने वाले हैं उन्हें क्लेश कैसे हो सकता है ? जिनके नाममात्र से सब के बन्धन टूट जाते हैं, उन्हें कोई बन्धन में कैसे बांध सकता है ?

छुड़ा देते हैं प्राणी से जो माया मोह दुनियां का।
बिछाते हा उन्हीं के वास्ते क्यों जाल ममता का ॥
मनोरथ सन्त जन का और इनका नाम होने दो।
हुआ है जिस लिये अवतार वह भी काम होने दो ॥

गाना (तर्ज—चौधवी का चान्द हो⋯)

राजन तुम्हें तो धर्म भुलाना न चाहिए।
बन्धन में मोह के कभी आना न चाहिए ॥
भूमी का भार हरने को अवतार यह हुआ।
इस लोक हित में कोई बहाना न चाहिए ॥
तुम पुत्र जानकर इन्हें ममता में फस गये।

पर ब्रह्म को तो मोह में लाना न चाहिए ।।
कर्तव्य जान अपना इन्हें भेज दो 'कुशल' ।
सन्तों को खाली हाथ तो जाना न चाहिए ।।

दशरथ—अच्छा गुरुदेव ! आपकी और ऋषिराज की आज्ञा को सिर धरता हूं; धर्म की रक्षा के लिये मोह ममता को वश करता हूं । जाओ बेटा ! अब कुछ समय के लिये ऋषिराज के संग चले जाओ और ये जो आज्ञा दें उसे सच्चे मन से बजाओ (विश्वामित्र से) लीजिये महाराज ! इन बालकों का हाथ अपने हाथ में लीजिये :—

तुम्हें अर्पण है मेरी उम्र भर की जो कमाई है ।
बड़ी मुश्किल से ईश्वर ने शक्ल इनकी दिखाई है ।।
लिया है हाथ में जो हाथ इस का मान भी रखना ।
दया करके प्रभो रक्षा का इनकी ध्यान भी रखना ।।

विश्वामित्र—निश्चन्त रहो राजन् ! कल्याण हो ! आशाएं पूर्ण हों कोई संकोच न करो और चिन्ता रहित होकर अटल राज करो ।

गाना

आनन्द रहो, चिरकाल जियो, संसार उजागर नाम रहे ।
घर में, कुल में, जनताजन में, सुख शान्ति रहे आराम रहे ।।
यह आर्शीवाद हमारा है, जग में कल्याण तुम्हारा है ।
ममता, माया व्यापे न तुम्हें, मद लोभ न मन में काम रहे ।।
चिन्ता छोड़ो, भ्रम दूर करो, ममता और मोह का नाम न लो ।
वह जंगल फिर क्या जगल है ? जिस जंगल में श्रीराम रहे ।।
जब दुष्ट इन्हें दुख पहुंचायें, फिर दुष्ट दलन क्यों कहलायें ।
जब शोक इन्हें ही व्याप गया, फिर कुशल कहां सुख-धाम रहें ?

(राम-लक्ष्मण से) आओ बेटा ! अब मेरे साथ आओ:—

छोड़ कर आराम सारे कुछ क्षणों के वास्ते ।

अब करो कुछ काम भी योगी जनों के वास्ते ।।
नाम से उज्जवल तुम्हारे सूर्य-कुल का नाम हो ।
यश तुम्हारा हो जगत में और हमारा काम हो।।

राम—चलिये प्रभु !

नमस्कार गुरुदेव मम, पूज्य पिता प्रणाम ।
जाता हूं तन मन सहित, आज ऋषि के काम ।।

[विश्वामित्र का दोनों को लेकर जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(परदा जंगल)

[विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण सहित प्रवेश]

राम—मुनिराज ! यह कौन सा स्थान है ।

विश्वामित्र—बेटा! यह भयंकर बन राक्षसों का स्थान है । यहीं ताड़का नाम की एक प्रसिद्ध राक्षसी रहती है, जिसके द्वारा ऋषि समाज बडा कष्ट सहती है ।

राम—उसका क्या वृतान्त है प्रभो !

विश्वामित्र—हे राम ! सुकेतुयक्ष एक परम भक्त था । उसने ब्रह्मा जी का तप करके एक सन्तान का वरदान पाया और उसके घर में ताड़का का जन्म हुआ । कन्या के योग्य हो जाने पर सुकेतु-यक्ष ने उसका विवाह जम्भासुर से कर दिया और कालांतर में उसके मारीच नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ । कुछ समय पश्चात अगस्त्य मुनि ने सुकेतुयक्ष के किसी दुराचार पर क्रोधित होकर उसे भस्म कर दिया । इस पर यह दुष्ट ताड़का अपने पुत्र मारीच सहित मुनि को मारने दौड़ी । तब मुनि ने शाप दिया कि तुम दोनों राक्षस हो जाओ । उसी समय से यह पापिनी अपने पुत्र सहित इस बन में निवास करता है ।

राम—सत्य है महाराज ! ऋषियों को सताने का ऐसा ही फल होता है ।

विश्वामित्र—अच्छा अब सावधान हो जाओ; देखो, नाम लेते ही वह हत्यारी पत्थर बरसाती और घोर शब्द करती इसी ओर चली आ रही है। पहले उसे ठिकाने लगाओ।

राम—परन्तु भगवन ! स्त्री का मारना तो अधर्म है।

विश्वामित्र—नहीं ! जो स्त्री गौ, ब्राह्मण और सन्तों के लिये दुख-दाई है, उसके मारने में दोष नहीं, बल्कि बड़ाई है।

राम—तो फिर चिन्ता क्या है ? उसे आने दीजिए और अपना परा-क्रम दिखाने दीजिये।

ताड़का--(ललकारती हुई) अहार ! अहार ! भूखी का अहार !

राम—बस, वहीं ठहर मुरदार ! यदि आगे पग बढ़ाया तो जान ले कि तेरा काल आया।

ताड़का—अरे मूर्खों ! तुम तो मेरा आहार हो; आज तुम्हें भोजन बनाऊंगी और अपनी प्रचण्ड क्षुधा मिटाऊंगी।

राम—बस मिटा चुकी, अब परलोक यात्रा के लिये तैयार होजा।

[ताड़का का आगे बढ़ना और राम का बाण मार कर उसे समाप्त कर देना]

विश्वामित्र—धन्य हो बेटा ! अच्छा पराक्रम दिखाया, एक ही बाण में दुष्टा को यमपुर पहुंचाया। अच्छा अब हमारे आश्रम में चलो, वहां तुम्हारे जल-पान का कुछ प्रबन्ध करेंगे।

राम—चलिये प्रभो !

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(विश्वामित्र का आश्रम)

विश्वामित्र—लो बेटा ! आश्रम आ गया, पहले कुछ कन्द मूल फल खालो, फिर तुम्हें विद्या सिखाएंगे।

राम—महाराज ! इसकी चिन्ता न कीजिये। खान-पान की कुछ इच्छा नहीं है, पहले विद्या ही सिखाइये।

विश्वामित्र—अच्छा तो देखो ! यह योग आसन है (आसन बताना) यह प्राणायाम करने की विधि है (विधि समझाना) और यह 'वला अतिबला नामक' विद्या है जिसका प्रभाव महान है। जिसके पास यह विद्या होती है उसे भूख-प्यास नहीं सताती, निद्रा नहीं आती बल्कि आत्मा में बल और शरीर में शक्ति आती है !

राम—धन्य हो प्रभो ! धन्य हो ! अच्छा अब हमें कुछ शस्त्र-विद्या भी सिखाइये।

विश्वामित्र—बहुत अच्छा ! (सिखाते हुए) देखो यह सीधा बाण, यह पवन-बाण, यह अग्नि-बाण और यह दलन-बाण है। युद्ध में इन से बड़ा यश मिलता है।

राम—धन्य हो प्रभो !

विश्वामित्र—अच्छा बेटा ! लो अब हम तुम्हें महादेव जो के दिए हुए बाण देते हैं। इनका पराक्रम बहुत बड़ा है। ये तुम्हारी अनेक प्रकार से रक्षा करेंगे। इन विद्याओं का निरन्तर अभ्यास करते रहना।

राम—(बाण लेकर) अनुग्रह महाराज ! महा अनुग्रह ! अच्छा अब आप निश्चन्त होकर यज्ञ कीजिये और रक्षा का सारा भार हमारे ऊपर छोड़ दीजिये। हमारे होते आपके यज्ञ में कोई बाधा न होगी।

[विश्वामित्र का यज्ञ करना, राम-लक्ष्मण का बाण तानकर खड़े हो हो जाना और मारीच, सुबाहु का आना]

लक्ष्मण—भ्राता जी ! वह देखो, फिर घोर शब्द सुनाई पड़ रहा है। प्रतीत होता है कि उस राक्षसो के पक्षपाती आ पहुंचे हैं।

राम—आने दो ! हम भी उन्हीं की प्रतीक्षा में बैठे हैं !

मारीच—(आकर) ओ नीच बालक ! मेरी माता के घातक ! अब सावधान हो जा ! और अपनी ढिटाई का दण्ड भोगने को तैयार हो जा !

राम—आ ! ओ दुष्ट ! तुझे भी वही फल चखाता हूं; जहां तेरी माता गई है तुझे भी वहीं पहुचाता हूं ।

कर चुके विध्वस अब तक यज्ञ ऋषियों के बहुत ।
विघ्न डाले धार्मिक कामों में मुनियों के बहुत ।।
अब सहाई हो गया इनका हमारा बाण है ।
वास्तव में यह तुम्हारो मौत का सामान है ।।

मारीच - ओह !

होश कर और देख क्या है बाल तेरे सामने ।
आ गया मारीच बनकर काल तेरे सामने ।।

राम—चल ! अभिमानी ! परलोक-यात्रा को चल ! आपे से बाहर न निकल ।

[पवन-बाण मारना, मारीच का उड़ जाना]

सुबाहु—सम्भल, सम्भल ! अभी से इतना न उछल :—

भूल जाएगा चलाना इक घड़ी में तीर का ।
पड़ गया जो हाथ पूरा इस सुबाहू वीर का ।।

राम—दुष्ट ! यदि सामने आएगा तो तू भी वही दण्ड पाएगा ?

सुबाहु—अच्छा तो देख :—

अब पड़ा है सामना करना तुझे बलवान का ।
फल अभी मिल जाएगा मूरख तेरे अभिमान का ।।

राम—चल ! अधिक बात न बना, यम के द्वार चलकर नरक का ईंधन बन जा :—

जो हुआ मारीच का होगा वही तेरा भी हाल ।
देख मेरा बाण अब आता है बनके तेरा काल ।।

[बाण मारना, सुबाहु का मरना, लक्ष्मण का अन्य राक्षसों को मार गिराना]

विश्वामित्र—धन्य है बेटा ! धन्य है ! मेरी विद्या सफल हुई ।

राम—ऋषिराज यह सब आपके चरणों का प्रताप है ।

विश्वामित्र—अच्छा अब कुछ फल फूल खालो और फिर आश्रम में जाकर विश्राम करो।

राम—महाराज! अभी कुछ आलस्य नहीं आया है। पहले आप आराम कीजिये। और हमें चरण-सेवा का सौभाग्य दीजिए।

विश्वामित्र—चिरंजीव रहो पुत्रो! जगत में तुम्हारी कीर्ति फैले।

(विश्वामित्र का लेट जाना, राम-लक्ष्मण का चरण दबाना, जनक के दूत का आना]

दूत—(प्रणाम करके और पत्र देकर) महाराज! मिथिलापुरी से यह सन्देश आया है।

[पत्र देकर जाना]

राम—मुनिराज! इस पत्र में क्या वृतान्त लिखा है?

विश्वामित्र—(पढ़कर) बेटा! मिथिलापुरी के राजा जनक ने अपनी गुणवन्ती सपुत्री सीता का स्वयवर रचाया है और वर-वधु को आशीर्वाद देने के लिये हमें भी बुलाया है। उनका प्रण है कि जो शम्भु चाप को चढ़ायेगा, सीता को वही पायेगा।

लक्ष्मण—तब तो बड़ा ही रोचक दृश्य होगा महाराज!

विश्वामित्र—हां-हां, बड़े समारोह का समागम होगा।

राम—तो क्या उसे देखने के लिए हम भी जा सकते हैं?

विश्वामित्र—क्यों नहीं? हम प्रातःकाल तुम्हें लेकर चलेंगे। धनुषयज्ञ तो वास्तव में राजपुत्रों के लिये ही होने वाला है। हमें तो केवल देखने को बुलाया है।

राम—उपकार प्रभो!

[सबका विश्राम करना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(परदा—जंगल)

[शिला रूप अहिल्या का पड़े हुए दिखाई देना]

राम—महाराज ! यह बन तो कुछ अनोखा ही प्रतीत होता है। न पशु विचरते हुए दिखाई देते हैं न पक्षी बोलते हुए सुनाई देते हैं। इसका क्या कारण है मुनिराज !

विश्वामित्र—इसका कारण ? वह देखो सामने पड़ी हुई पत्थर की शिला है।

राम—पत्थर की शीला ? इसका क्या वृतान्त है प्रभो ?

विश्वामित्र—बेटा ! यह शिला किसी समय अहिल्या नामक बड़ी सुन्दर और कोमल स्त्री थी तथा महर्षि गौतम बड़े कर्मकांडी और धर्मपरायण इसके पति थे। एक बार जबकि गौतम ऋषि अर्द्ध रात्री के समय गंगा-स्नान को चले गये तो इन्द्र इसके रूप पर मोहित होकर गौतम होकर ऋषि का रूप बनाकर उनके घर चला आया और इसके साथ व्यभिचार किया। कुछ समय पश्चात गौतम भी लौट आये। इस स्त्री ने इन्द्र को छिपाकर ऋषि से झूठ बोला, इस पर ऋषि ने क्रोधित होकर इसे शाप दिया कि तू पत्थर की हो जा। यह शाप सुनकर अहिल्या बहुत डरी और अनेक प्रकार से विनती करने लगी; तब ऋषि ने दया करके यह वरदान दिया कि जब सूर्य-वंश में रामावतार होगा तो उनके चरणों की रज से तेरा उद्धार होगा।

राम—बड़ी ही विचित्र कथा है महाराज !

विश्वामित्र—हाँ, परन्तु रघुवीर ! अब कृपा करके इस अभागिन का पाप हरो और चरण-रज देकर इसे भवसागर के पार करो।

गाना **लावनी**

दोहा—सुनो राम ! यह पापिनी अधम अहिल्या नार।
बिन रज हो सकती नहीं भवसागर के पार ॥

लावनी—यह दीन बिचारी दुखियारी कर्मों की मारी नारी है।
पापों ने इसको घेरा है, दुखिया पर संकट भारी है॥

अब केवल आस तुम्हारी है तुम ही इसका उद्धार करो।
उपकार की यह अभिलाषा है रघुकुल-भूषण उपकार करो ।।
तुम दुख भंजन कहलाते हो इसका भी दुख हरना होगा।
तुम पार उतारन हारे हो इसको भी पार करना होगा ।।
संकोच तजो, आगे को बढ़ो चरणों को राम छुवाओ तुम।
इसको तो पल-पल भारी है क्यों व्यर्थ ही देर लगाओ तुम ।।

राम—जैसी आज्ञा गुरुदेव !

[राम का चरण छुवाना और शिला का स्त्री रूप हो जाना]

अहिल्या—धन्य, धन्य ! हे नाथ ! आपकी पतित-पावनता को धन्य!

गाना

प्रभो ! तुम धन्य ! और यह धन्य माया।
अपावन को महापावन बनाया ।।
पड़ी थी बन के पत्थर शाप के वश।
महा पापों ने था मुझ को दबाया ।।
बताऊं किस तरह इस रज की महिमा।
किया पावन चरण ज्यों ही छुआया ।।
महा आनन्द देखा इक नजर में।
तुम्हारे ही चरण में स्वर्ग पाया ।।
न जो सम्भव कुशल संसार में।
वह इक ठोकर में ही करके दिखाया ।।

[अहिल्या का आकाश को उड़ जाना और विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण सहित आगे चलना परदा गिरना]

दृश्य छठा

(गंगा जी का दृश्य)

[विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण सहित प्रवेश]

राम—हे नाथ ! यह धारा किस नाम से प्रसिद्ध है ?

विश्वामित्र—बेटा ! इसे तरण-तरिणी गंगा कहते हैं। इसकी कथा

बड़ी विचित्र है।

राम—वह किस प्रकार है प्रभो !

विश्वामित्र—हे राम ! तुम्हारे उच्च कुल में सगर नामक एक राजा त्रिलोकि में प्रसिद्ध हुए हैं। उनके दो सुन्दर रानियां थीं। एक का नाम केशिनी और दूसरी का सुमति था। कुछ समय पश्चात राजा दोनों रानियां को लेकर बनों में चले गए और भृगु मुनि के आश्रम के निकट रहकर तपस्या तथा उनकी सेवा करने लगे। अन्त में मुनि ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि केशिनी से एक और सुमति से साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति होगी। यह आशीर्वाद पाकर राजा अयोध्या चले आए। शुभ अवसर आने पर केशनी के गर्भ से असमंजस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुमति के गर्भ से एक तुम्बी हुई जिसमें से साठ हजार पुत्र पैदा हुए। राजा सगर निन्नानवे यज्ञ सम्पूर्ण कर चुके थे, जब सौवां यज्ञ करने लगे तो इन्द्र बड़ा भयभीत हुआ और अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा कपिल मुनि के आश्रम में छिपा दिया। राजा की आज्ञा से उनके साठ हजार पुत्र घोड़ा ढूंढने निकले और खोजते हुए कपिल मुनि के आश्रम में जा पहुंचे। घोड़ा तो मिल गया परन्तु समाधि भंग हो जाने से मुनि को बड़ा क्रोध आया और शाप देकर उन सबका भस्म कर दिया। अन्त में यह सोचकर कि उनका उद्धार केवल गंगा जी के पवित्र जल से ही हो सकता है राजा सगर ने गंगा जी का तप किया और वे इसी अवस्था में देवलोक सिधार गये। इसके पश्चात राजा के पुत्र अंशुमान ने भी तप किया किन्तु वे भी सफल न हो सके। अंशुमान के पुत्र राजा दिलीप और फिर राजा दिलीप के पुत्र राजा भागीरथ हुए। भागीरथ ने अन्न-जल त्याग कर गंगा जी की घोर तपस्या की; अन्त में गंगा जी ने प्रसन्न होकर मृत्यु-लोक में आना तो स्वीकार

कर लिया किन्तु कहा कि मेरी जलधार को शिवजी महाराज के अतिरिक्त और कोई नहीं रोक सकता, इसलिये पहले उनको प्रसन्न करो। तब राजा ने शिवजी को आराधना करके उनको भी प्रसन्न किया और गंगा जी मृत्युलोक में आ गईं। शिवजी महाराज ने एक वर्ष तक गंगा जी को अपनी जटा में धारण किये रखा। इसके पश्चात् उसकी एक धारा आकाश को चली गई जिसका नाम मन्दाकिनी हुआ; दूसरी पाताल को गई जो प्रभावती के नाम से प्रसिद्ध हुई और तीसरी को भागीरथ जी ले आए, जिसको गंगा कहते हैं। इसी की पवित्र धारा से सगर के पुत्रों का कल्याण हुआ।

राम—धन्य हो प्रभो !

[गंगा जी के कई पण्डों का उनको अपना यजमान बताकर झगड़ना]

एक पण्डा—आइये महाराज ! पधारिये ! आप मेरे यजमान हैं।

दूसरा—नहीं महाराज ! यह झूठ बोलता है, आप मेरे यजमान हैं।

तीसरा—कदापि नहीं, ये मेरे यजमान हैं।

चौथा—अरे ! क्यों बातें बना रहा है, ये तो आदिकाल से हमारे यजमान हैं।

पहला—जाओ ! अपना रास्ता देखो, दूसरे के यजमानों को ठगना चाहते हो ? यह अच्छी बात नहीं !

दूसरा—तो क्या ये कभी तुम्हारे यजमान हो सकते हैं ?

पहला—क्यों नहीं ! ये सदा से ही हमारे यजमान हैं।

तीसरा—अरे भाई ! इस प्रकार झगड़ने से कोई लाभ नहीं ! जो महाराज की वंशावली सुनायेगा वही दक्षिणा पायेगा।

पहला—ठीक ! बिल्कुल ठीक ! अच्छा अब देखें कौन आगे आता है जो इनकी पूर्ण वंशावली सुनाता है। [सबका चुप हो जाना]

पहला पण्डा—महाराज ! ये सब आप को धोखा दे रहे हैं। आप के प्राचीन पण्डा हम ही हैं। यह लीजिए अपनी वंशावली सुन लीजिए आपके वंश में सबसे पहले राजा अव्यक्त हुए जिनका

पुत्र ब्रह्मा और ब्रह्मा का मारीच तथा मारीच का पुत्र कश्यप हुआ। राजा कश्यप के यहां महाराज सूर्य का जन्म हुआ जिनके नाम पर आप के कुल को सूर्यवंश कहते है। राजा सूर्य के यहां राजा मनु और मनु के यहां राजा व्यस्त का जन्म हुआ। राजा व्यस्त के पुत्र अक्षवाकु और राजा अक्षवाकु के राजा काक्षी हुए। राजा कोक्षी के घर में राजा बाड और राजा बांड के घर में राजा अणिरन्य उत्पन्न हुए। फिर राजा अमरस्त और अमरस्त के पुत्र राजा पृथु हुए। पृथु के त्रिशंकर, त्रिशंकर के धरीमार और धरीमार के राजा जानाशु हुए। इसके पश्चात जानाशु के मान्धाता, मान्धाता के सुसिन्धु और सुसिन्धु के दो पुत्र हुए एक ध्रुवसिन्धु तथा दूसरे प्रसिनजित। ध्रुवसिन्धु के राजा अस्त और अस्त के राजा भरत तथा भरत के यहां राजा सगर पैदा हुए, जिन्होंने सो अश्वमेध यज्ञ किये और जिनके साठ हजार पुत्र कपिल मुनि के कोप से जलकर भस्म हो गये। इनके दो पुत्र असमंजस तथा अंशुमान हुए। अंशुमान के राजा दिलीप और दिलीप के भागीरथ हुए जो इस तरण-तारिणी गंगा को मृत्युलोक में लाए। इन्हीं भागीरथ के पुत्र का नाम काकस्त और काकस्त के पुत्र का नाम रघु था जिनके नाम पर आप के वंश को रघुवंश भी कहते हैं। राजा रघु के यहां राजा कलमाखपाद, कलमाखपाद के राजा शखन, राजा शंखन के सुदर्शन और सुदर्शन के राजा शीघरक उत्पन्न हुए; फिर राजाशीघरक के राजा मरु, मरु के प्रशश्र और प्रशश्र के अम्रोक तथा अम्रीक के यहां नीकस्य ने जन्म लिया। इन्हीं नीकस्य को सन्तान राजा जजात थे। राजा जजात के राजा नाभाग, राजा नाभाग के राजा अज और राजा अज के पुत्र ही आपके पिता दशरथ हैं।

विश्वामित्र—ठीक है! रघुवंश के पण्डे तुम्हीं हो!

राम—(अपनी अंगूठी उतार कर) यह लो अपनी दक्षिणा!

[सबका गंगा पार होना, परदा गिरना]

पांचवां अंक

दृश्य पहला

(जनकपुर की झांकी)

[विश्वामित्र राम-लक्ष्मण सहित एक आश्रम में ठहरे हैं राजा जनक मिलने आते हैं]

जनक—(प्रणाम करके) ऋषिराज के चरणों में जनक का प्रणाम स्वीकार हो।

विश्वामित्र—चिरंजीव रहो राजन्! कल्याण हो!

जनक—महाराज! आपने बड़ा अनुग्रह किया जो ऐसे शुभ अवसर पर दर्शन दिया। आपके साथ ये दोनों किस बड़ भागी के दुलारे हैं जो आज जनकपुर पधारे हैं?

विश्वामित्र—राजन्! ये अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के सुकुमार हमारे साथ हैं। इनका नाम राम और ये लक्ष्मण इनके छोटे भ्रात हैं।

राम-लक्ष्मण—महाराज जनक को हमारा नमस्कार है।

जनक—चिरंजीव रहो पुत्रों!

खुले हैं भाग्य अब मिथिला नगर-वासी विचारों के।
ऋषि के साथ ही दर्शन मिले दशरथ कुमारों के॥

विश्वामित्र—राजन्! यह आपकी बड़ाई है, जो आपने इन बालकों के प्रति ऐसा श्रद्धा दिखाई है।

जनक—अच्छा महाराज! किसी प्रकार कष्ट न उठाना, यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो तुरन्त सूचना पहुंचाना।

राम—नहीं महाराज ! हम बड़े सुख में हैं । किसी प्रकार का कष्ट नहीं है । आप का प्रबन्ध सराहने योग्य है ।

लक्ष्मण--निस्सन्देह !

मुनिवर की कृपा से हो गया इस ओर जो आना ।
लिखा था भाग्य में दर्शन जनक जो आपका पाना ।।

विश्वामित्र—राजन् ! आप हमारी ओर से निश्चिन्त रहें, हमें कोई कष्ट नहीं है ।

जनक—अच्छा महाराज ! तो आज्ञा दीजिए, अब दूसरे अतिथियों से मिलने भी जाना है ।

विश्वामित्र—अच्छा राजन ! आनन्द रहो ।

[जनक का जाना]

विश्वामित्र—बेटा ! अब सन्ध्या का समय भी होने वाला है, इसलिए तुम दोनों जाओ और पूजा के लिए जनक-वाटिका से कुछ पुष्प ले आओ !

राम लक्ष्मण—जैसी आज्ञा गुरुदेव !

[दोनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

(पुष्प-वाटिका)

[राम-लक्ष्मण का आना और वाटिका की शोभा को देखकर प्रसन्न होना]

अहा !

जिधर देखो उधर ही टहनियों पर फूल आये हैं ।
खिली पड़ती हैं कलियां डालियों ने सिर झुकाये हैं ।।

(फूल तोड़ना)

वाह वाह ! वाटिका क्या है सुरलोक की फुलवारी है, जिधर

देखो उधर की छटा ही न्यारी है :—

सरोवर, ताल, निमल हैं किलोल हंस करते हैं।
मधुर वाणी से पक्षी बोल-रस कानों में भरते हैं ।।

लक्ष्मण—क्यों न हो !

स्वर्ग से बढ़कर न क्यों भूमि पे फिर वह धाम हो ।
धन्य है वह बाग जिसमें राम को आराम हो ।।

राम—देखो लक्ष्मण ! पौधे किस प्रकार मस्त होकर झूम रहे हैं और भौंरे गुंजार-गुंजार कर फूलों का मुँह चूम रहे हैं :—

शोभा लटक रही कहीं फूलों की डार में।
सुन्दर कमल खिले हैं कहीं जल की धार में ।।

गाना

देखो लक्ष्मण ! कैसा उपवन, पत्ते पत्ते पर यौवन है।
कलियां चटकीं,सुमन खिले अरु शाखाओं का नव-जीवन है ।।
नित-शीतल मंद सुगंध पवन,करता हुआ चलता पुलकित तन ।
आशाओं का सुन्दर पुष्पित बन, अद्‌भुत आनन्द-निकेतन है ।।
पक्षी मृदु तान सुनाते हैं, कैसे पुलकित हो गाते हैं।
जन-जन का मन हर्षाते हैं, सुखधाम मनोहर मधुबन है ।।
सर, ताल, सरोवर निर्मल जल, जिनमें फूले हैं कुशल कमल।
सुन्दर कलियां पत्ते कोमल, सचमुच सुरपुर का दर्शन है ।।

लक्ष्मण—निस्सन्देह भ्राता जी ! बनाने वाले ने वाटिका में कोई कमी नहीं छोड़ी है; इसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है :—

फल फूल डाल डाल की शोभा बढ़ा रहे।
हैं वृक्ष कल्पवृक्ष को लज्जित बना रहे ।।

राम—और जरा इधर तो देखो !

जुही, चम्पा, चमेली, क्या नई शोभा दिखाती हैं।

गले में डाल कर बाहें नहीं फली समाती हैं ।।

लक्ष्मण—परन्तु भ्राता जी ! सुनिये तो सही ! कैसे मधुर संगीत की ध्वनि आ रही है, मानो इन्द्र के दरबार में उर्वशी गा रही है।

राम—प्रतीत होता है कि देवी पूजन के लिये कुछ स्त्रियां आ रही हैं। आओ एक ओर हो जायें और पहले उन्हें निकल जाने दें।

[दोनों का एक ओर खड़े हो जाना और सीता जी का सखियों सहित आना।]

गाना

चलो मन्दिर में माता के विनय अपनी सुनाने को।
श्रद्धा और प्रेम से चरणों में उनके सिर झुकाने को।।
सकल संसार के क्षण में जो संकट नाश करती है।
उसी के सामने जाती हैं अब इच्छा जताने को।।
श्रद्धा से भेंट है उसकी सदा जीवन सदा तन मन;
हृदय के भाव रूपी पुष्प हैं उस पर चढ़ाने को।।
सुनाएंगे उसे दुख—दर्द अपना और मरम अपना;
करेंगे प्रार्थना उससे 'कुशल' संकट मिटाने को।।

सखी (१)—सखी ! आज तो ऋतुराज ने अनोखी ही शोभा दिखाई है, वह देखो ! फूलों पर कैसी बहार आई है :—

किया है मोतियों से ओस के शृंगार फूलों ने।
लता के डाल के अपने गले में हार फूलों ने।।

सखी (२)—हां ! ठीक ही कहती हो :—

पसीना आ गया लाले पै बेले की निगाहों से।
नजरशरमा गई नरगिस की चम्पा की अदाओं से।।

सीताजी—अरी सखियो ! इनके रंग रूप का ही बखान करती हो या इनकी सुगन्धि की ओर भी ध्यान करती हो ?

जिन्हें है रूप प्यारा चाह वे सूरत की करते हैं।

जो गुण को चाहते हैं वे कहां रंगत पै मरते हैं ।।

सखी (३)—हां सखी ! आज की शोभा को देखकर तो मन यही चाहता है कि कोई सुन्दर राग गाए और झूला झूल कर मन बहलायें ।

सखी (१)—हां सखी ! तूने मेरे मन की बात छीन ली है ।

सीता—अच्छा तो आओ और कोई सुन्दर मल्हार गाओ ।

गाना

टेक—आओ आओ प्यारी, गावें सारी, बगिया की छवि न्यारी ।
देखो क्यारी-क्यारी, कैसी प्यारी, कुदरत के बलिहारी ।।
क्या फूले फूल रंगीले, महकी है क्यारी—क्यारी ।
आओ—आओ प्यारी……

सखी (१)—क्या दिखाई इस जगह परमात्मा ने शान है ।
मन के बहलाने को यह कैसा परम स्थान है ।।

सखी (२)—डाल पर क्या रंग है और फूल पर कैसा निखार ।
हो गई यह वाटिका सुर-वाटिका, सुन्दर अपार ।।

सखी (३)—डालियों में लग रहे मेवे रसीले रस भरे ।
चान्दनी चम्पा कहीं गेंदें कहीं हैं मोगरे ।।

सीताजी—फूल में सौ रंग हों लेकिन अगर खुश्बू न हो ।
कौन ढूंढे फूल को जब मन हरण जादू न हो ।।

सब—क्या फूले फूलें रंगीले महकी है क्यारी-क्यारी ।
आओ आओ……

[पीछे से एक सखी का आना]

सखी—कहो सखी ! क्या बात है ? इतनी प्रसन्न कैसे हो रही हो ?

नई सखी—क्या बताऊं बहिन !
यहां की सैर करने आज दो सुकुमार आये हैं ।
अनोखा रूप है, सुन्दर हैं, कोमल हैं, सुहाये हैं ।।

सखी (२)—अरी ! कहीं ये वही राजकुमार तो नहीं जो मुनि विश्वामित्र के साथ आए हैं और नगर के सकल नर नार को भाए है। :—

नुना है रूप उन दोनों का है बस योग्य दर्शन के।
लखे जो मोहिनी मूरत बड़े ही भाग्य उस जन के ।।

वही सखी—हाँ-हां, सचमुच यही बात है। चलो मैं तुम्हें, अभी दिखा देती हूं।

[सबका उसके साथ जाना]

वही सखी—वह देखो ! रसाल के वृक्ष के नीचे, चम्पा के कुंज के पास !

सीताजी—(राम को देखकर) अहा विधाता ! कैसा अलौकिक रूप है ! कैसी मनोहर मूर्ति है। एक बार नारद जी ने मुझे वचन दिया था कि तुझे प्रथम बार इसी पुष्प-वाटिका में अपने पति के दर्शन होंगे क्या वह वचन आज ही सत्य हो रहा है। :—

उदय क्या आज ही होगा मेरे सौभाग्य का तारा।
मिला है आज क्या इस वाटिका में प्राण आधारा ।।

लक्ष्मण—(सीता जी को देखकर) देखिये भ्राता जी ! यह फुलवारी में कौन सुकुमारी है ?

राम—भाई, ऐसा प्रतीत होता है कि यह ही जनक-दुलारी है, जिसके लिये कल स्वयंबर की तैयारी है :—

इसी के रूप ने जादू सा सब वृक्षों पे डाला है।
इसी के तेज का इस बाग के अन्दर उजाला है ।।

लक्ष्मण—भ्राता जी ! आज पहली बार आप के मुख से सुन्दर रूप का वर्णन हो रहा है, इसका क्या कारण है प्रभो ?

राम—क्या बताऊं भाई ! यह आश्चर्य की बात ही नहीं, लज्जा का भी स्थान है कि मेरा मन इस प्रकार चलायमान है। :—

बे ठिकाने यह नजर आजन्म जा सकती नहीं।
ध्यान में मेरे पराई नार आ सकती नहीं॥
क्या कहूं लीला विधाता की कही जाती नहीं।
चोट वह दिल पर पड़ी है जो सही जाती नहीं॥

लक्ष्मण—ऐसा क्यों हो रहा है प्रभो !

राम—नहीं कह सकता कि यह इस रूप का आकर्षण है या मेरी आंखों का दोष है? क्योंकि मैं जितना दमन करता हूं, उतना ही मन इसकी ओर खिंचा जाता है; दिल को जितना समझता हूं, उतना ही अधिकार से बाहर हुआ जाता है।

गाना

सुनाऊं किस तरह क्या-क्या मेरे दिल पर गुजरती है।
वह ज्योति चन्द्रमुख की हाय इन आंखों में फिरती है॥
भरमता है उसी की ओर दिल भौंरा मेरा बन कर।
उसी के प्रेम-रस का आत्मा बस पान करती है॥
निहारे हर घड़ी इस रूप को इच्छा है आंखों की।
यह प्यासी दृष्टि दर्शन से नहीं पल भर को भरती है॥
कटीले नैन से इसके कुशल बेचैन दिल मेरा।
वह सूरत मोहनी सी आह मन का धोर हरती है॥

प्रेम ! तू कितना प्रबल है ! तेरी बेडियों में कितना बल है ?

बन्ध गया है मन जो मेरा प्रेम रूपी जाल से।
किसी तरह छूटेगा हे भगवान इस जंजाल से॥

सखी (१)—राजकुमारी ! तुम बड़ी देर से इसी ओर क्या देख रही हो ? कहीं आज मन की चोरी तो नहीं हो गई ?

सखी (२)—बताओ बहिन ! अपने मन की दशा कुछ तो बताओ ?

सीताजी—क्या बताऊं ?

गाना

रूप अनूपम श्याम वरण का इक शोभा दिखलाता है री।
कुंडल कानन, माल कंठ और मुकुट शीश मन भाता है री॥
लम्बी बाहें, नेत्र विशाला, वाणी मधुर चाल मतवाली।
अलकें काली, टेढ़ी चितवन टीका चित्त चराता है री॥
एक हाथ फूलों की डाली, एक हाथ है वाण री आली।
दुष्ट दलन जो धनुष है प्यारा कांधे शोभा पाता है री॥
क्या वरणूं कुछ ज्ञान नहीं है रूप को महिमा चन्द्र-वदन के।
मुख की शोभा देख कुशल वह कामदेव शर्माता है री॥

सखी (१)—निस्सन्देह ये राजकुमार शोभा की खान हैं, और भोले भाले मन को चुराने में बड़े ही सुजान हैं।

सखी (२)—हां, हां, ! वह देखो ! भौंरा इनके मुख को कमल समझ कर उसी ओर मण्डला रहा है।

सखी (३)—और तोता होटों को बिम्बा फल जानकर चारों ओर चक्कर लगा रहा है।

सीताजी—प्राण विधाता ! आज तुझे क्या स्वीकार है ? मेरा मन इनसे प्रेम करने के लिये क्यों बेकरार है !

गाना

बसी है मन में यह प्यारी सूरत यह रूप दिल में समा रहा है।
यही है धन और यही लगन है खयाल इनका ही आ रहा है॥
विधाता करदे यह आस पूरी रहूं मैं चरणों में इनके हर दम।
यही है आशा यही है इच्छा यह ध्यान मन में समा रहा है॥
धनुष है शिवका कठोर निश्चल, भुजाएं इनकी बड़ी ही कोमल।
यही है संकोच अब हृदय में मन को व्याकुल बना रहा है॥
विधाता अनुकूल हम पे रहना, पड़े न संकट विरह का सहना।
यह चन्द्रमुख है चकोर मन है 'कुशल' जो प्रीति लगा रहा है॥

सखी—सखी ! समय बहुत हो गया। अब मन की उझलन को छोड़ो और पार्वती जी का पूजन करो।

सीता जी—आहो ! मैं तो अपने विचारों में ही खो गई थी ! चलो अब शीघ्र चलकर माता पार्वती के दर्शन पायें और उन्हें अपना मर्म सुनायें।

[सब का जाना]

लक्ष्मण—भ्राता जी ! अब चलिये ! गुरुदेव की सन्ध्या का समय होता जा रहा है।

राम—(ठण्डी सांस भरकर) हां भाई चलो। :—

पांव को चलना पड़ेगा मन यहां रह जायगा।
चोट खायेगा परन्तु कुछ नहीं कह पायेगा॥

[राम लक्ष्मण का जाना, दृश्य-परिवर्तन पर पार्वती-मन्दिर का दर्शन]

सीता जी—(पार्वती जी के सन्मुख) सुनो ! हे माता पार्वती ! आज सीता की पुकार सुनो ! दयालु हृदय के पट खोलकर सुनो !

गाना

आसरा तेरे सिवा भाता नहीं संसार में।
आस लेकर आई है दासी तेरे दरबार में॥
या तो दे शक्ति बड़ा बस उस मेरे चितचोर की।
या कमी करदे दया करके धनुष के भार में॥
है पसारा सामने पल्ला तेरे भिक्षा मिले।
कुछ कमी आती नहीं माता तेरे भण्डार में॥
जानती हर मन की तू है कामना सारी कुशल।
क्या कहूं फिर अपनी इच्छा आपसे हर बार में॥

हे गिरिराज किशोरी ! यदि मैंने अपने जीवन में कोई पुण्य कर्म किया है तो उसका केवल यही फल दीजिये कि राम को धनुष तोड़ने की शक्ति प्रदान कीजिये।

पार्वती—सीता ! निराश न हो, तेरी मनोकामना अवश्य पूरी होगी।

सीता जी—धन्य है, माता ! धन्य है !

[सखियों सहित सीता का जाना परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(सीता-स्वयंवर)

[दरबार सजा है, सारे राजे महाराजे अपने-अपने आसन पर बैठे है, मन्च पर विश्वामित्र राम लक्ष्मण सहित विराजमान हैं, सिहासन पर राजा जनक और उसके पास एक सुन्दर मन्च पर सीता जी सखियों सहित बैठी हैं सब के बीच मे धनुष रखा है।]

जनक—राव जी ! हमारी प्रतिज्ञा सबको सुना दी जाय।

भाट—जैसी आज्ञा महाराज ! (ऊंचे स्वर में)

अब कान लगा बलवान सुनो है राजा जनक का एक परण।
नहीं होगा कदापि मिथ्या कथन है शूरवीर का सत्य वचन ।।
है बीच सभा शिव-धनुप पड़ा, जो वीर करे इसका भंजन।
सम्मान बढ़े और सिया मिले, राजा के हो प्रण का पालन ।।

हे राजसभा में पधारे हुए शूरवीरो ! अब महाराज जनक की प्रतिज्ञा सुनो ! आप लोगों के सामने जो 'शम्भु चाप' पड़ा है वह उठाने में भारी और पराक्रम में बहुत बड़ा है। जो वीर इस धनुष को उठायेगा, वही सीता का पति कहलायेगा। इसलिये अब आओ और अपना-अपना परक्रम दिखाओ !

राजा (१)—लगाया जोर जब मैंने मिटा दूंगा सभी खटका।
धनुष ढूढा न पाएगा दिया जब हाथ का झटका ।।

[थककर बैठ जाना]

राजा (२)—यह धनुष बोदा है इसका तोड़ना क्या बात है।
तोड़ डाले सैंकड़ों इसकी तो क्या औकात है ।।

(जोर लगाकर) अरे ! यह धनुष नहीं धोखा है ।

राजा (३)—लगाया हाथ मैंने और मिटी कठिनाइयां इसकी ।
यदि कहदो तो इकदम में उड़ा दूं धज्जियां इसकी।।
(धनुष को छू कर) ओहो ! यह धनुष तो वास्तव में बहुत भारी है ।

राजा (४)—बस बैठ जाओ कर लिया मैदान सर बहुत ।
शक्ति नहीं शरीर में और शोरो शर बहुत ।।
अब हाथ पड़ गया है जो मुझसे जवान का ।
देखो कि दम में चढ़ता है चिल्लाकमान का ।।

रावण—(आकर) वाह ! वाह !
शंकर का चाप और ये दो दिन के छोकरे ।
शक्ति कहां यह कीड़ी की पत्थर में खो करे ।।
लोकों में आज फैला हुआ जिसका नाम है ।
इसको उठा के तोड़ना रावण का काम है ।।
(सोच कर) परन्तु नहीं, यह चाप मेरे पूज्य देव शिवजी महाराज का चाप है, इसका तोड़ना तो अलग निरादर से छूना भी महापाप है । (फिर सोच कर) ओहो,जनक ने कैसा विचित्र जाल फैलाया है कि शिव का धनुष तोड़ना ही सीता के विवाह का प्रतिबन्ध बनाया है । ओह कैसा नीच ख्याल है ? कितनी गहरी चाल है कि रावण अपने गुरु का चाप कदापि नहीं तोड़ सकता, इसलिए सीता के साथ विवाह का सम्बन्ध भी नहीं जोड़ सकता । ठीक है, कपटी की कपट-चाल सफल हो गई और रावण की सारी योजना निष्फल हो गई । इस लिए अब चलूं, अपने दूसरे कामों में काहे को विलम्ब करूं ?:—
वक्त आयेगा तो यह भी देखा भाला जायेगा ।
इस कपट का भी कभी बदला चुकाया जायेगा ।।
(जाना)

भाट—महाराज बाणासुर जी ! अब आप भी अपनी शक्ति आजमाइये और धनुष को उठाकर ससार में यश पाइये ।

बाणासुर—नहीं-नहीं ! यह मेरे गुरु का चाप है, इसलिये इसको तोड़ना महापाप है । :—

न डालूंगा मैं इस पर भूलकर दृष्टि निरादर की ।
मेरे ता वास्ते वस्तु है यह सत्कार आदर की ।।

जनक—(क्रोध से) लज्जा करो, लज्जा करो, हे छाती उभार कर चलने वाले कायरो ! लज्जा करो ! हे वीरता के नाम को कलकित करने वाले डरपोको ! लज्जा करो ! आज भली प्रकार प्रकट हो गया कि वीरता ससार से विदा हो गई, क्षत्रीपन की लाज हवा हो गई । आजकल के राजकुमारों से किसी बात की आशा रखना भूल है, इन रंगे हुए गीदड़ों को सिह समझना बुद्धि के प्रतिकूल है (शोक में पड़ कर) आह ! यदि मैं पहले से जानता तो स्वयंवर का प्रण कदापि न ठानता । जिस धनुष को कुमारी सीता बड़ी सुविधा से उठा लेती थी, इन वीरों को उसका हिलाना भी भारी है; इसलिए पुत्री को कुंवारी बिठाने में लाचारी है । जाओ! हे अभिमानियो ! अब अपने-अपने घर जाओ यदि कुछ लाज है तो अपनी स्त्रियों के आंसूओं में डूब जाओ !

प्रकट अब हो गई है वीरता इस वीर मण्डल की ।
न जिसमें नाम को जल है गरज है ऐसे बादल की ।।
किया था जो कभी मैंने वचन अब हो चुका पूरा ।
चलो बस अपने घर जाओ परण अब हो चुका पूरा ।।

लक्ष्मण गाना (लावनी)

दोहा—राजन होकर इस कदर ज्ञानवान बलवान ।
एक जरा सी बात पर वीरों का अपमान ।।

लावनी—क्यों बिना विचारे कहते हो ये वचन तुम्हारे तीखे हैं ।

करते हैं घायल हृदय को बरछी हैं वाण सरीखे हैं ।।
एक एक छेद है छाती में एक एक तुम्हारी वाणी पर ।
सब को अपमानित कर डाला केवल इनको नादानी पर ।।
जो वीर पुत्र क्षत्रिय हैं अपमान नहीं सह सकते हैं ।
अपमानित हो कुलमान तो फिर खामोश कहां रह सकते हैं।।
बुलवा कर राज सभा में जो क्षत्री कुल का अपमान किया ।
अपने मेहमानों का तुमने यह क्या अच्छा सम्मान किया ।।

हे राजा ! इतनी ढिटाई ! वीरों का अपमान करते हुए लज्जा न आई ! न कुछ सोचा न विचारा, जो मुंह में आया सोई कह डाला । श्री रामचन्द्रजी के उपस्थित होते हुए वीरों का जो अपमान किया है समझ लो कि नाश का सामान किया है । जहां रघुवंश के दो दो धनुषधारी विराजमान हैं, वहां ऐसे कड़वे वचन कहना विष के समान है । यदि भ्राताजी की आज्ञा होती, तो अभी इस अपमान का बदला चुका देता, रंगभूमि को रणभूमि बना देता । तुम नहीं जानते कि जब तक सूर्यवंश का सूर्य चमकता है, वीरों को अपमानित कौन कर सकता है । :—

धनुष, बोदा धनुष, कुछ भी नहीं है वीर के आगे ।
उड़ा दूं पर्वतों तक को जो आयें तीर के आगे ।।

विश्वामित्र—शान्त ! बेटा लक्ष्मण शान्त ! क्रोध को थूक डालो, राजा के सन्मुख ऐसे कटु वचन न निकालो ! जनक जी ने जो कुछ भी कहा है कायरों के लिये कहा है । देखो उनकी कामनाओं का फूल मुरझा गया है, उनकी आशाओं पर पानी फिरा जा रहा है, फिर क्रोध आना स्वाभाविक ही है ।

लक्ष्मण—(राम से) सुनो ! हे रघुकुलमणि, मेरी एक प्रार्थना सुनो ।

गाना

दोहा—हाथ जोड़ बिनती करूं, चरण नवाऊं शीश ।

राजा ने अनुचित वचन, आज कहे जगदीश ।।

लावनी—जिस सभा में आप पधारे हों और खड़ा हो सेवक आज्ञा में ।
फिर कौन भला कह सकता है ये वचन कटीले दुनियां में ।।
हे नाथ हूं सेवक चरणों का कहने को यों सकुचाता हूं ।
पर वचन हैं बिल्कुल सत्य मेरे मैं कसम आपकी खाता हूं ।।
ब्रह्मांड उठालूं ऐसे मैं सम्भव यह मुझ को पाता है ।
जिस तरह खेलने को बालक साधारण गेंद उठाता है ।।
रक्खा है फिर क्या हे स्वामी ! इस बोदे धनुष विचारे में ।
मूली की तरह तोड़ डालूं पर्वत को एक इशारे में ।।

दोहा—पत्ती है इक फूल की, तिनके से कमजोर ।
ये राजा करने लगे, फिर क्यों इतना शोर ।।

भ्राता जी ! राजा जनक ने बड़ी अनुचित बात कही है जो मुझ से नहीं सही गई है । मैं अभिमान त्याग कर और आपके चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि यदि आपकी आज्ञा पाऊं तो इस धनुष को कमल की डंडी के समान उठाऊं । बाहू के झटके से बड़े-बड़े विशाल पर्वतों का हिला दूं, आकाश और रसातल का पल्ला मिलादूं ।

तोड़ डालूं इस तरह जिससे जगत भयभीत है ।
वीर मण्डल कह उठे लक्ष्मण ! तुम्हारी जीत है ।।

राम—(प्यार से) ठीक है भाई ! मैं तुम्हारे पराक्रम को भली प्रकार जानता हूं, परन्तु इस समय क्रोधित न होना चाहिये । आवेश में आकर अपनी गम्भीरता को नहीं खोना चाहिये । राजा जनक हमारे बड़े हैं और इस समय तो बेचारे महान निराशा में खड़े हैं । सोचो, समझो और ध्यान से मेरी बातें सुनो !

गाना

अच्छा नहीं है लक्ष्मण ! झगड़ा तुम्हें बढ़ाना ।
भाता नहीं किसी का हमको मरम दुखाना ।।

सीखा है आज तक जो हमने बनों में रह कर।
अनुचित है इक घड़ी में सारा ही भूल जाना ॥
राजा जनक बड़े हैं आदर उचित है इनका।
कर्त्तव्य जो हमारा वह चाहिये निभाना ॥
जिन से न चाप उट्ठा कायर उन्हें कहा है।
फिर कब उचित है ऐसी बातों पे मुंह चढ़ाना ॥
त्यागो यह क्रोध भाई! खामोश हो के बैठो।
आज्ञा है जो गुरु की उसको कुशल निभाना ॥

लक्ष्मण—(सिर झुका कर) जैसी आज्ञा महाराज। (बैठ जाना)

विश्वामित्र—देखो! हे राम! सभा के शान्त वायु मण्डल को देखो निराशा में बदलती हुई जनक की आशा को देखो! बेटा! अब तुम भी अपना पराक्रम दिखाओ और इन लोगों का सन्ताप मिटाओ!

गाना

हे राम उठो, मत देर करो तुम को शिव चाप उठाना है।
अब बात बिगड़ती जाती है तुम को यह बात बनाना है ॥
बलहीन हुए बलवान सभी, बैठे हैं निराशावान सभी;
पूरे करके अरमान सभी, जन-जन का शोक मिटाना है ॥
तुम सूर्यवंश के तारे हो, दशरथ के राजदुलारे हो।
भूमण्डल में रघुकुल-दीपक, तुम को ही तो चमकाना है ॥
इक दिल की आशा टूटी है,इक सांस को उलझन उलझी है।
इस उलझन को इस मुश्किल को तुमको हो तो सुलझाना है॥
देखो हिलने पाये न मही, आकाश न डोले जरा कहीं,
यह अन्त समय का समय नहीं,इस तौर से चाप झुकाना है।

राम—जो आज्ञा प्रभो!

दोहा—आज्ञा पाकर आपकी जाता हूं महाराज।
आशीर्वाद से आप के पूर्ण हों सारे काज ॥

लाज आज रखना मेरी शरणागत प्रतिपाल ।
तेरा ही बल है मुझे हे प्रभो दीन दयाल ।।

(धनुष उठा कर) लीजिये ! यह वही धनुष है जिससे प्रत्येक वीर भय खाता है, लो देखो अब इसका चिल्ला कान तक आता है ।

उठाने के लिये जिसके विवश हर शूर होता है ।
उसी का देखिये अब किस तरह से चूर होता है ।।

[पटाखे की आवाज पर धनुष तोड़ देना]

सब—जय ! जय ! दशरथ कुमार की जय !

[सीता का जयमाला पहनाना]

विश्वामित्र—धन्य हो बेटा ! तुमने रघुकुल का नाम उज्जवल कर दिखाया । जो देखते ही देखते धनुष को कई टुकड़े बनाया ।

राम—महाराज ! यह सब आपका ही आशीर्वाद है .

जनक—धन्य है ! वह पिता धन्य है जिसने ऐसा पुत्र रत्न पाया ! वह वीर माता धन्य है जिसने अपनी कोख से ऐसा कर्मवीर जाया । विधाता ! तुम धन्य हो ! तुमने मेरी शंकाओं को मिटा दिया, डूबती नैया को किनारे लगा दिया ।

[परशुराम का प्रवेश]

परशुराम—(क्रोध में) हैं ! क्या कारण हुआ ?

कांप उठे दिग्पाल इक दम, पड़ गए पृथ्वी में बल ।
रुक गये हिलते समन्दर हो गये चन्चल अचल ।।
वृक्ष डोले, गूंज उठा जंगल, उधर कांपी मही ।
शोर वह फैला पहाड़ों तक को मेखें हिल गईं ।।
आ गया मुख पर पसीना और आतुर मन हुआ ।
क्या अकारण आज शम्भू-चाप का भन्जन हुआ ।।

जनक—(हाथ जोड़ कर)

दोहा—दर्शन देकर आप ने किया बड़ा उपकार।
शीश नवाऊं चरण में करूं विनय हर बार ॥
दया-दृष्टि से हो गये पूर्ण हमारे काम।
स्वामी को सीता करो हाथ जोड़ प्रणाम ॥

सीता जी—ऋषिराज प्रणाम ! (सिर झुकाना)

परशुराम—दोहा—दूर रहे तुझसे सदा, द्वेष-भाव और राग।
शोक न व्यापे जगत में, होवे अटल सुहाग ॥

विश्वामित्र—(गले मिलकर):—
राम लखन आगे बढ़ो, इन्हें नवाओ शीश।
सुखदाता, संकटहरण ऋषियों का आशीश ॥

राम-लक्ष्मण—महात्मन् ! प्रणाम।

परशुराम—राम, लखन दोनों जियो ! सदा प्राप्त जय होय।
नाम रहे उज्ज्वल सदा, जग में निर्भय होय ॥

जनक—आइये महाराज ! आसन ग्रहण कीजिए।

परशुराम—कहो जनक ! आज नगर के गली, कूचे, महल, अटारी क्यों सवारे हैं ? देश-देश के राजा मिथिलापुरी में किस लिए पधारे हैं ?

जनक—महाराज ! सेवक ने सीता का स्वयवर रचाया था, इसलिये इन सब को न्यौता भेजकर बुलाया था। अब आपकी कृपा…

परशुराम—(बात काटकर) यह तो ठीक है। परन्तु यह चाप किसने तोड़ा है ? शकर की पवित्र कमान पर किस दुष्ट ने हाथ छोड़ा है ? ओह ! इतना साहस, इतनी निडरता ?

यह ढिटाई ! इस कदर अन्याय ! ऐसा पाप क्यों।
सामने मेरे पड़ा खण्डित यह 'शम्भू-चाप' क्यों ॥
सच बता दे कौन है शत्रु मेरा दरबार में।
अन्यथा यह राज्य अब छोड़ू नहीं ससार में ॥

राम—महाराज ! इतना क्रोध न कीजिए। शम्भू-चाप तोड़ने वाला आपका कोई सेवक ही होगा।

परशुराम—सेवक ? कौन सेवक ? किसका सेवक ? शम्भू-चाप तोड़ने वाला और मेरा सेवक ?

मान का बैरी है वह पुतला है वह अभिमान का।
जिसने तोड़ा है धनुष शत्रु है मेरी जान का।।

लक्ष्मण—ओहो मुनिराज ! रहने दीजिए ! आप इतने क्यों तलमला रहे हैं ? आखिर यह क्रोध किसे दिखा रहे हैं ?

हजारों तोड़ डाली धुनकियां ऐसी लड़कपन में।
कभी देखा नहीं था क्रोध ऐसा आपके मन में।।

परशुराम—अरे मूढ़ बालक ? तुझे इतना अभिमान ! शंकर की पवित्र कमान का इतना अपमान। क्या तू मेरे क्रोध को नहीं जानता है ? जो छोटे मुख से बडी बातें बखानता है। देख मैं बाल-ब्रह्मचारी हूं बड़ा तेजवान और बलकारी हूं। मेरा परशा दुष्टों के होम की वेदी है, मैंने कई बार पृथ्वी क्षत्रीहीन करके ब्राह्मणों को दान दे दी है।

महा यमराज का फन्दा मेरे परशे की धारा है।
इसी परशे से मैंने सहस्रबाहु को पछाड़ा है।।

लक्ष्मण—ओहो ! तब तो आप बड़े ही बलवान हैं और अपने मुख से अपनी बड़ाई करने में भी परम सुजान हैं। परन्तु महाराज ! हम भी तो मोम को डली नहीं जो अग्नि देखते ही पिघल जाएंगे, ओस की बूंद भी नहीं,जो धूप पड़ते ही ढल जाएंगे—

कुल्हाड़े ऐसे-ऐसे तो हजारों बार देखे हैं।
छुरी के घाव देखे हैं तबर के वार देखे हैं।।
बड़े योद्धा, बड़े बलवान और बलकार देखे हैं।
जो मरने से नहीं डरते वही सरदार देखे हैं।।

भला इन धमकियों का आपकी हम पर असर होगा।
डगेगा वह ही परशे से जिसे मरने का डर होगा ॥

परशुराम—अरे मूर्ख ! मैं तुझे बालक जानकर ही बचा जाता हूं, तेरी छोटी अवस्था पर तरस खाता हूं; नहीं तो (दांत पीसकर) नही तो :—

तेरे निर्लज्ज शब्दों पर हूं मैं जी में जला बैठा।
नहीं जीता बचेगा तू जो मैं परशा चला बैठा ॥

लक्ष्मण—क्यों नहीं ! आप निस्सन्देह ऐसे ही हैं ? परन्तु महाराज ! मैंने भी आपको ब्राह्मण जान कर अब तक कुछ नहीं कहा है, नहीं तो मुझे भी कई बार क्रोध आ चुका है। हमारे शास्त्र में गो-ब्राह्मण का मारना महापाप है, इसलिए मुझे पश्चाताप है।

कायरों के मारने में वीर की कब शान है।
दुख न देगा दीन को क्षत्री की जो संतान है ॥

परशुराम—(भड़क कर) ओह इतना निडर ! इतना अन्यायी ! ऐसे कटुवचन कहते हुए तनिक भी लज्जा न आई। अच्छा मूर्ख ! अब सम्भल ! ले, सीधा यम के द्वार चल। (परसा उठाकर) देखो समाज के बैठने वालो। अब मुझे दोष न देना, मैंने अब तक बड़ी शान्ति से काम लिया है, बार-बार अपने क्रोध को थाम लिया है। परन्तु यह निडर बालक बड़ा ही निर्भाग है, सांप का बच्चा जहर में बुझा हुआ जहरी नाग है :—

जितना मैं सीधा चला उतना यह टेढ़ा हो गया।
जिस कदर नर्मी बढ़ी दूना बखेड़ा हो गया ॥
अब नहीं छोड़ूंगा मैं जीता इसे संसार में।
क्रोध की इक धार आई और इसकी धार में ॥

[परशा दिखाना]

लक्ष्मण—तो महाराज ! बार-बार किसे सुनाते हो ? जो कुछ करना-धरना है शीघ्र ही क्यों नहीं कर दिखाते हो ?

क्या किसी की सम्मति लेनी है ऐसे काम में।
कर दिखाओ बस, नहीं बट्टा लगेगा नाम में ।।

परशुराम—कठोर बालक ! फिर वैसे ही कटु वचन बोलकर जले हुये को और जलाता है; अरे मूर्ख ! आप ही अपना काल क्यों बुलाता है :—

क्या तुझे संसार में जीवन दुखारी हो गया।
मूर्ख बच्चा है अभी क्यों जीना भारी हो गया ।।

विश्वामित्र—(स्वयं) अहा !

अभी तक है अन्धेरे में मुनि के ज्ञान का परदा।
पड़ा है इनकी बुद्धि पर निपट अज्ञान का परदा ।।
भुलाकर मार्ग सीधा क्या विकट रस्ते पै चलते हैं।
जो हैं ब्रह्मांड के स्वामी उन्हें बालक समझते हैं ।।

(परशुराम से) शांत ! ऋषिराज शान्त ! बालक पर क्रोध करना साधु का धर्म नहीं; इस प्रकार लड़ना झगड़ना ब्राह्मण का कर्म नहीं।

परशुराम—विश्वामित्र जी ! यह बालक हटधर्मी और गंवार है। इसके साथ नर्मी करना ऐसा ही है जैसा विषैले सर्प के बच्चे के साथ दया का व्यवहार करना। किन्तु फिर भी मैं आपके कहने से इसको क्षमा किये देता हूं।

लक्ष्मण—क्यों महाराज ! क्या इतना जल्दी क्रोध शान्त हो गया ? ओहो कैसे भोले मुनि हैं ! (अंगूठा दिखाना)

परशुराम—नहीं रक्खेगा ! कैंचो की तरह चलने वाली जबान को बन्द नहीं रक्खेगा, अरे मूर्ख ! क्या अंगूठा दिखाकर मेरे हाथ से मृत्यु का मजा चक्खेगा ?

लक्ष्मण—क्या बरसने वाले बादल भी गरजते हैं? पात्र जो ओछे हाते हैं, वही छलकते हैं :—

बस स्वामी जी आप की देखी सब करतूत।
करना-धरना कुछ नहीं लड़ने को मजबूत॥

परशुराम—फिर बोला, फिर अमृत में विष घोला। अरे मूर्ख! मेरे क्रोध की अग्नि को और न भड़का! यदि अपनी रक्षा चाहता है तो मेरे सामने से दूर होजा! नहीं तो :—

तू यदि काल महा-काल भयकर होगा।
वज्र और लोह से कठिनाई में बढ़कर होगा॥
रूप तूफान का उमड़ा हुआ सागर होगा।
क्रोध की आग से फूका हुआ विषधर होगा॥
मल के भुंगे की तरह तुझको मिटादूं तो सही।
काल को काल के पजे में फसादूं तो सही॥

राम—महात्मन! शान्ति कीजिए; बच्चों की बातों पर ध्यान न दीजिए।

हम तो बालक हैं न गुस्से से डराओ स्वामी।
भूल जायें तो हमें राह दिखाओ स्वामी॥

परशुराम—राम! तेरा भाई बड़ा कठोर और कराला है, शरीर से गोरा किन्तु अन्दर में काला है, मानो सोने के पात्र में विष भरा हुआ है।

लक्ष्मण—महाराज! ऐसा मैंने आप को क्या कह दिया? आप तो व्यर्थ ही क्रोधित होने लगे, यदि वह बोदा और पुराना धनुष टूट गया तो रोने लगे, अच्छा यदि आप को इसके टूटने का महान दुख है तो एक काम कीजिये किसी अच्छे कलाकार को बुलवा कर जुड़वा लीजिये। (अंगूठा दिखाना)

परशुराम—देख! हे राम! देख! तेरा भाई अब भी मझे जला

रहा है, दूर से ही खड़ा २ अंगूठा दिखा रहा है। बस अब नहीं रहा जाता, इतना अपमान नहीं सहा जाता (परशा उठाकर) ले अज्ञान बालक ! अब सावधान हो और मरने के लिए तैयार हो।

कह चुका है बहुत कुछ बस अब न आपे से निकल।
चल निडर बालक तू अब परलोक के रस्ते पै चल ॥

(परशा चलाना चाहते हैं किन्तु हाथ रुक जाता है) हैं ! विधाता यह क्या ! छाती जलती है किन्तु हाथ नहीं उठता, हृदय में अग्नि भड़कती है किन्तु परशा नहीं चलता ! स्वभाव बदल गया, साहस भँग हो गया, बड़े-बड़ वीरों का वध करने वाला परशा आज निष्फल हो गया। ओह !

लड़ा जाकर अनेकों बार सुर, नर, देव, नायक से।
यहाँ जो हार भी मानी तो मानी एक बालक से ॥

लक्ष्मण—महाराज ! आपकी बड़ाई और पराक्रम तो कई बार सुन चुका हूं अब कोई दूसरो कहानी भी सुनाइये; या तो कुछ कीजिए और या कान दबा कर सीधे चले जाइये। आप बातें क्या कर रहे हैं, मानों मुंह से फूल झड़ रहे हैं। (आंख मारना)

परशुराम—लेजा ! जनक ! यदि इस बालक की रक्षा चाहता है तो मेरे सामने से दूर लेजा। नहीं तो यह परशे की धारा इसका खून…… (दांत पीसना)

राम—नाथ ! इतना क्रोध करके अपने मन को क्लेश न दीजिए ! यह बालक है, इसे अज्ञान समझ कर ही क्षमा कीजिए।

परशुराम—बस सुन लिया ! यह जो कुछ कह रहा है, सब तेरे संकेत से कह रहा है। तुम दोनों ने एक प्रकार की मिली भगत गांठी है, जितना यह क्रूर है उतना ही तू अपराधी है।

— (—) ...ो ! मुनि का स्वभाव गर्म होता ही जा रहा है;

यदि इस अग्नि पर पानी न डाला जायगा तो फिर इस का शांत करना कठिन हो जायगा। (प्रकट) महाराज! यह आपने अच्छी रीति निकाली है कि अपराध तो इनका है और भली-बुरी मुझे भी कह डाली है। सच कहा है :—

नीम कड़वा है उसे कोई पशु खाता नहीं।
जल समंदर का है खारी काम में आता नहीं॥
आग में है तेज कोई पास तक जाता नहीं।
चन्द्रमा दोयज का हो तो ग्रहण में आता नहीं॥
है मेरी आधीनता से ही ये सारे हौंसले।
आप चढ़ते ही गये हम जिस कदर नीचे ढले॥

परशुराम—हां! तुझे भी धनुष तोड़ कर बड़ा अभिमान हो गया है। जरा यह तो बतला कि तू कब से बलवान हो गया है :—

राम—महाराज! मैं कह चुका हूं कि हमें बालक समझकर ही क्षमा कर दीजिए, हां यदि कोई हमारे योग्य सेवा हो तो आज्ञा कीजिये।

परशुराम—अच्छा, यदि तुझे अपनी शक्ति पर इतना अभिमान है तो ले इस धनुष पर बाण चढ़ाकर दिखा कि कितना बलवान है।

राम—लाइये महाराज! (धनुष बाण लेकर चिल्ला चढाना)

परशुराम—(चरण छूकर) धन्य हो! धन्य हो! दशरथ कुमार धन्य हो! अब मेरा सारा भ्रम दूर हो गया, मन का अहंकार चूर हो गया। निस्सन्देह रामावतार हो चुका है, आज आप से मिलकर मुझे परमानन्द प्राप्त हुआ है।

[राम और परशुराम का सम्मिलित गाना]

गाना

परशुराम—तुम शोक हरण भय भंजन हो।

राम—ऋषिराज तुम्हारी करुणा से।

राम—तुम लोभ-मोह-मद मोचन हो ।
परशुराम—महाराज तुम्हारी महिमा से ।
परशु०—तुमने जग में रघकुल-दीपक रोशन करके दिखलाया है ।
अभिमान, क्रोध, मद को मन से भक्तों के शीघ्र मिटाया है ।।
राम—तुमने बल तेज ऋषिजन का ससार को ज्ञात कराया है ।
आनन्द सकल जग का तुमने निज धर्म के हित बिसराया है ।।

परशुराम—तुम सन्त मुनिमन रंजन हो !
राम—ऋषिराज तुम्हारी करुणा से ।।
राम—तुम लोभ मोह मद मोचन हो !
परशुराम—महाराज तुम्हारी महिमा ने ।।

परशु०—तुम जीव अपावन को स्वामी भव-सिन्धु से पार लगाते हो ।
हो हितकारी तुम दीनों के और अशरण-शरण कहाते हो ।।
राम—तुम सदा ही अपनी वाणी में वेदों की महिमा गाते हो ।
हो कुशल ज्ञान विज्ञानों में, सत्कार जगत में पाते हो ।।

परशुराम—तुम राम हो दशरथ-नन्दन हो ।
राम—ऋषिराज तुम्हारी करुणा से ?
राम—तुम लोभ मोह मद मोचन हो ।
परशुराम—महाराज तुम्हारी महिमा से ।

[दोनों पर आकाश से पुष्प-वर्षा होना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(कौशल्या का महल)

[दशरथ और कौशल्या राम की याद कर रहे हैं]

कौशल्या—महाराज ! क्या आज भी कोई सूचना नहीं मिली ! मेरा मन तो राम-लखन के विरह में किसी प्रकार भी शान्ति नहीं पाता है । :—

दशरथ—प्रिय, क्या बताऊं ! जबसे दोनों पुत्र मुनि विश्वामित्र के साथ गए हैं तब से आज तक उनका कोई समाचार भी सुनने में नहीं आया। विधाता ! रक्षा करना। मेरे राजकुमारों की रक्षा करना !

कौशल्या—हाय हाय ! मैं कैसी माता हूं कि पुत्र के विरह में जीवित रह रही हूं—

गाना

राम-लक्ष्मण के बिना बेकार जीवन हो गया।
छा गया अन्धेर आंखों में, भवन वन हो गया॥
आंख से पानी बरसता है मेरी आठों पहर।
माघ का सूखा महीना भी तो सावन हो गया॥
फट नहीं जाती है छाती मौत भी आती नहीं।
वज्र का पापी कलेजा हाय साजन हो गया॥
आप ने भी हे कुशल उनकी कोई सुध ली नहीं।
हाय इस सन्ताप में जीवन का भंजन हो गया॥

दशरथ—प्रिय ! इस प्रकार घबराने से काम नहीं चलेगा, सन्तोष करने से ही यह आपत्ति का समय टलेगा। तुम तो आप ही बुद्धिमान हो सोचो, और समझो !

गाना

इस शोक में प्यारी तुम्हें सन्तोष होना चाहिये।
अपशगुन है इस तरह हर दम न रोना चाहिये॥
आंखोंका जल मन की जलन को शान्त कर सकता नहीं।
आंसू बहा कर रात-दिन मुखड़ा न धोना चाहिये॥
दुख मान लेने से कभी, दुख में कमी होती नहीं।
सन्तोष है दुख की दवा इसको न खोना चाहिये॥
जिसने विरह की आग दी, ठण्डी करेगा बस वही।
भगवान के आगे कुशल बस नम्र होना चाहिये॥

दासी—(आकर) महाराज की जय हो! मन्त्री जी मिलना चाहते हैं।

दशरथ—जाओ ! उन्हें यहीं भेज दो।

[दासी का जाना, सुमन्त का आना]

सुमन्त—महाराज मिथिलापुरी से एक दूत आया है।

दशरथ—क्या सन्देश लाया है ?

सुमन्त—आपके नाम यह पत्र लाया है।

दशरथ—अच्छा तो इसे पढ़ कर सुनाओ !

सुमन्त—(पत्र पढ़ना)

श्रीमान् रघुकुल भूषण महाराज दशरथ प्रणाम ! समाचार इस प्रकार है कि मैंने अपनी सुपुत्री सीता का स्वयंवर रचाया और न्यौता भेजकर सब राजकुमारों को बुलाया। मेरा यह प्रण था कि जो वीर शम्भु-चाप का चिल्ला चढ़ाएगा, वही सीता का पति कहलायेगा। सभी ने अपना अपना जोर लगाया किन्तु चाप को कोई हिलाने भी न पाया। इस पर मुझे बड़ी निराशा हुई और मैंने यह बात कह डाली कि संसार में क्षत्रियों की पामाली हो गई; पृथ्वी वीरों से खाली हो गई। इस पर आपके छोटे पुत्र लक्ष्मण को बड़ा क्रोध आया और उन्हें श्री राम ने ही समझाया अन्त में गुरु का आज्ञा पाकर कर्मवीर राम ने धनुष उठाया और सब वीरों को दिखाकर उसको कई टुकड़े बनाया। अब राम और सीता का शुभ विवाह रचाना है और इसीलिये आपको शीघ्र बारात समेत आना है।

आपका दास

'जनक'

दशरथ—अहा। देव ! तुम बड़े दयावान हो ! तुमने सब प्रकार से मेरा कल्याण कर दिया, अब राम के शुभ विवाह का अवसर भी

प्रदान कर दिया । :—

बड़े दाता हो आठों याम ही हे नाथ देते हो।
जो तुम देने पे आते हो तो दोनों हाथ देते हो ॥

कौशल्या—(प्रसन्न होकर) अहा विधाता ! तुम्हारी गति कोई नहीं जानता। तुम बड़े दयालु हो, तुम्हारी बाहें बहुत लम्बी हैं।

चौपाई—शुभ अवसर शुभ काल दिखायो।
मन-चिन्ता-सन्ताप मिटायो ॥
तव करुणा महिमा किमि गाऊं ।
चरनन सीस जगत-पति नाऊं ॥

दशरथ—अच्छा मन्त्री जो ! दूत को सुख पूर्वक ठहराओ ! नाच-रंग का प्रबन्ध कराओ और जनकपुर चलने के लिये बारात सजाओ।

सुमन्त—जैसी आज्ञा महाराज !

[सुमन्त का जाना, दृश्य परिवर्तन पर बारात की सजावट, हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि का दिखाई देना और बारात चढ़ना।]

दृश्य पांचवां

(जनकपुर में विवाह-मण्डप)

[राम और सीता का विवाह हो रहा है, आनन्द-बधाई गाई जा रही है]

गाना-बधाई

गाओ जी गाओ ! रङ्ग बधाई गाओ।
दूल्हा रंगीला है दुल्हन सजीली—दोनों की बेल बढ़ाओ।
गाओ जी गाओ…
संग सहेली हैं नई नवेली—राग सुहाग के गाओ।
गाओ जी गाओ…
जनकपुरी के भाग खुले हैं—दशरथ ब्याह रचाओ।

गाओ जी गाओ…

नर नारी सब मंगल गावें—कुशल अमर पद पाओ

गाओ जी गाओ…

(अग्निहोत्र और फेरों का दृश्य)

राजपुरोहित—आज का सकल समाज भगवान से प्रार्थना करता है कि वर-वधु आनन्द से जीवन बिताए; ससार की बाधायें इनके मार्ग में न आएं। दोनों सदैव अनुरागी हों, विश्व में यश और कीर्ति के भागी हों! बोलो मंगल करण सच्चिदानन्द भगवान की जय!

(सबका जयघोष करना)

[दृश्य परिवर्तन पर—स्त्री समाज में छन्द परम्परा]

एक स्त्री—राजकुमार! अब कोई सुन्दर छन्द सुनाओ और राजरानी से पुरस्कार पाओ!

राम—जैसी इच्छा—

छन्द

जागो जागो रे मनुज, नहीं जग तेरा!

अन्तरा (१)—काम क्रोध मद लोभ उचक्के, छोड़ सग मत बन चेरा।

जागो जागो……

साधु-सन्त सत्सग किया कर, छूट जाय जग का फेरा।

जागो जागो……

चंगल माया जग की झूठी—दुष्टा ने क्यों मन घेरा।

जागो जागो……

नाम प्रभु का कुशल है सच्चा—[illegible] करता तेरा मेरा।।

जागो जा[illegible]……

(राजरानी और अन्य स्त्रियों का पुरस्कार देना, परदा गिरना)

आरती-ध्वनि

छठा अंक

दृश्य पहला

(दशरथ—दरबार)

दशरथ—(दर्पण में मुंह देखकर) अहा ! अब तो कान के पास कुछ श्वेत बाल भी निकल आए हैं जो जवानी के अन्त और बुढ़ापे के आगमन का सन्देश लाये हैं। :—

अन्त होना चाहते हैं अब मेरे जीवन के दिन।
कह रहा मुझसे बुढ़ापा काल की घड़ियों को गिन।।
बुझ गया दीपक तो फिर होगी कहां से रोशनी।
क्या भरोसा स्वप्न जैसी है जगत की जिन्दगी।।

मानव-जीवन क्षणमात्र का है, ढलती हुई छाया है, नदी के किनारे का वृक्ष है, जो न जाने जल का वेग आ जाने से कब गिर पड़े। रेत की दीवार है, कौन कह सकता है कि भौंचाल की टक्कर से कब उखड़ पड़े।

इक झकोला है पवन का, बुलबुला जल-धार का।
टिमटिमाता सा दिया है जीव इस संसार का।।
काल की गोदी में जो कुछ दिन जिया तो क्या हुआ।
रह गया तो बात क्या और चल दिया तो क्या हुआ।।

वशिष्ठ जी—राजन्, आज विचारों की उलझन में क्यों पड़ रहे हो ? सब प्रकार से सुख-शान्ति होते हुए भी इतनी निराशा जनक बातें किस लिए कह रहे हो ?

दशरथ—महाराज ! युवावस्था के चाव, मन की उमंगें और हृदय के

उत्साह सब मद्धम पड़ते जा रहे हैं, बुढ़ापे के चिह्न और मृत्यु के ढंग स्पष्ट रूप से दृष्टि में आ रहे हैं। मैं सोच रहा हूं कि—

जो हलका मेरे सिर से राज रूपी भार हो जाये।
प्रजा का मेरे पीछे कोई पालन हार हो जाये॥
तो मैं निश्चन्त हो परलोक की भी साधना करलूं।
बनों में जाके अपनी आत्मा का कुछ भला करलूं॥

वशिष्ठ जी—राजन्! आपका मन पवित्र है और इसमें जो अभिलाषाएं जन्म लेती हैं वे भी पवित्र होती हैं। वास्तव में यह विचार बड़ा ही सुन्दर है, आपको अपना अगत अवश्य बनाना चाहिये।

दशरथ—सुनिये महाराज! राम मरे दुलारे हैं। कुटुम्ब, प्रजा, शत्रु और मित्र सबको प्यारे हैं। यदि आप राम को युवराज बनाए और उनके सिर पर राजमुकुट पहनाएं तो मेरे मन की समस्त चिन्ताओं को मिटाएं।

चौपाई—स्वामी राम बनावहु राजा।
एहि इच्छा प्रभु नगर समाजा॥
शील स्वभाव योग सब काहू।
प्रजा-हेत दारुण-दुख-दाहू॥

सुमन्त—हां महाराज! ऐसे पवित्र कार्य में विलम्ब न कीजिये, कोई शुभ महूर्त देखकर इसकी घोषणा करा दीजिये।

वशिष्ठ जी—(विचार कर) राजन्! इसके लिये कल का दिन ही उत्तम है, इसलिए तीर्थों का जल मंगवाओ और फल, फूल, चन्दन, केशर आदि एकत्र कराओ।

दशरथ—मन्त्री जी! शीघ्र ही सारा प्रबन्ध कर दो, राजमहल और और दरबार को सजवादो, नगर में मनादी करा दो कि सारी प्रजा आनन्द मंगल गाए और अपने-अपने घर-द्वार को सजाए.

प्रत्येक घर-में दीपावली की जाये और ब्राह्मणों तथा भिखा-रियों को दान दिया जाय।

सुमन्त—जैसी आज्ञा महाराज !

(जाना, परदा गिरना)

दृश्य दूसरा

[देवताओं का सरस्वती की विनती करना]

देवता—हे माता सरस्वती ! तुम देख रही हो कि अयोध्या में आनन्दमंगल गाए जा रहे हैं; राम के राज तिलक के उत्सव मनाए जा रहे हैं। किन्तु यह मंगल हमारे अमंगल का कारण है; राम का राज-तिलक, हमारे शोक का आगमन है। यदि राम राज काज में फंस जाएंगे तो दुष्ट राक्षस और भी उत्पात मचाएंगे और साधु महात्माओं को दिन काटने दुर्लभ हो जाएंगे।

सरस्वती—(स्वयं) बड़ा ही टेढ़ा प्रश्न है ! अब इस समस्या का सुलझना सम्भव दिखाई नहीं देता।

देवता—हे माता ! संकोच को छोड़कर शीघ्र ही कोई ऐसा उपाय करो जिस में राम राज्य को छोड़ कर बनों में चले जाएं और राक्षसों को मार कर सन्तों का संकट मिटाए।

सरस्वती—क्या करूं क्या न करूं ? यदि राम वन को जाएंगे तो सारे अयोध्या वासी पाले की मारी हुई लता के समान मुरझा जाएंगे। और यदि राम को राज मुकुट पहनाया जाएगा तो ऋषि समाज महान कष्ट पाएगा।

देवता—माता सरस्वती ! तुम इसका संकोच न करो; राम को न राज्य में-सुख है और न वनवास में दुःख। प्रजा वासी अपने मोह के लिये ही दुख पाते हैं, नहीं तो भगवान किस के बन्धन

में आते हैं। उनको तो संसार की शान्ति में शान्ति है।

सरस्वती—अच्छा तो इसका कोई सहज उपाय बताओ !

देवता—हे माता ! तुम केकैयी की दासी मंथरा के कण्ठ में बैठ जाओ और केकैयी को उल्टी सीधी पट्टी पढ़ाओ, यदि उस पर यह जादू चल जाएगा तो हमारा काम अवश्य बन जाएगा।

सरस्वती—हां ठीक विचार है, मैं इसी समय जाती हूं और अपनी माया का जाल फैलाती हूं। निःसन्देह इसी में लोक कल्याण है।

[सरस्वती का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(अयोध्या में मनादी हो रही है, लोग घरबार की सफाई करते और मंगल-बधाई गा रहे हैं)

मनादी वाला गाना

मेरी विनती सुनो जी, मेरी विनती सुनो।
नगरी अयोध्या के वासी जनो॥
कल को राम बनेंगे राजा यह शुभ अवसर आया।
मुनिराज ने सोच समझकर यह ही लगन बताया॥
मेरी विनती···
राजा दशरथ की आज्ञा है सुन लो करके कान।
सब अपने घर-बार सजाओ गाओ मंगल-गान॥
मेरी विनती···
दीपावली रात को होगी सजें महल दरबार।
परम सुहाई रंग बधाई गावें सब नर-नार॥
मेरी विनती···

नगरवासी (१)—अहा विधाता ! तेरी गति कैसी न्यारी है कि प्रातः काल ही राम के राजतिलक की तैयारी है!

दूसरा—हां भाई ! हमारी आशाओं का कमल खिल रहा है, जो राम को प्रजा-पालन का अवसर मिल रहा है।

[मंथरा का नगरी की शोभा देखते हुए आना और सरस्वती का उस पर मोहनी डालना ।]

मंथरा—क्यों भाई ! आज यह कैसा उत्सव मनाया जा रहा है ? नगर को क्यों सजाया जा रहा है ?

नगरवासी—अरी मंथरा ! क्या तुझे यह भी पता नहीं कि कल राम को राजतिलक होने वाला है ।

मंथरा—हूं ! यह बात है ? (गम्भीर विचार में पड़ जाना)

(मंथरा का जाना, परदा गिरना)

दृश्य चौथा

(कैकेयी का महल)

कैकेयी—आनन्द के दिन भी कितनी शीघ्रता से चले जाते हैं कि अनुभव में ही नहीं आते हैं। राम के विवाह को एक वर्ष बीत गया और ऐसा प्रतीत होता है, मानो कल की बात है।

(मंथरा का आना और चुपचाप खड़े हो जाना)

कैकेयी—दासी ! आज तो तूने बड़ी देर लगाई, सच बता नगर से क्या-क्या समाचार लाई ?

(मंथरा शान्त रहती है और लम्बे २ सांस लेती है)

कैकेयी—मंथरा ! आज तो तेरा मन कुछ उदास सा प्रतीत होता है।

(मंथरा फिर भी चुप रहती है)

कैकेयी—अरी चंचला ! आज तेरी फर-फर चलने वाली जबान को क्या हो गया ? क्या तुझे सांप सूंघ गया ?

[मंथरा फिर भी चुप रहती है)

कैकेयी—अरी कुछ तो बतला ! आखिर क्या बात है ? राम, लक्ष्मण,

भरत और शत्रुघन तो कुशल से हैं ? राज-दरबार में तो शांति है ? आज तू मौन क्यों हो रही है ?

मन्थरा—मौन न हूं तो क्या करूं रानी जी ! तुम्हारे सर्वनाश को देख कर मेरे मन में बड़ा दुख होता है। क्या तुमने नगरी की शोभा नहीं देखी है ? क्या तुम्हें घर-घर में बधाई नहीं सुनाई पड़ रही है ? अफसोस :—

कमर बांधी है राजा ने तुम्हारे ही मिटाने पर।
खुलेगा भेद सारा कुछ समय के बीत जाने पर ॥

कैकेयी—क्यों ? ऐसा क्या समाचार है ?

मन्थरा—क्या तुम्हें पता नहीं कि कल राम को राजा बनाया जा रहा है ?

कैकेयी—(प्रसन्न होकर) राजा ! मन्थरा ! क्या तू सच कहती है ? क्या वास्तव में कल राम को सिंहासन पर बिठाया जायगा ?

मन्थरा—हाँ, बिलकुल सच कहती हूं।

कैकेयी—तब तो बड़े आनन्द का समागम है, बड़ी प्रसन्नता की बात है। सचमुच मेरी आशाओं का कमल खिलने वाला है; और मन्थरा, याद रख कि तुझे भी भरपूर पुरस्कार मिलने वाला है। ले, यह हार सम्भाल और फिर दूंगी। (हार देकर)

खुले हैं भाग्य हम सब के, घड़ी शुभ आज आई है।
तुझे कहना था हे दासी, बधाई है, बधाई है ॥

मन्थरा—बधाई तो जिनके लिये है, उन्हीं के लिये है। तुम्हारा अधिकार तो देखती आंखों मिटाया जा रहा है जो भरत को ननिहाल भेज कर राम को सिंहासन पर बिठाया जा रहा है। हाय ! हाय ! :—

लुट रहा है घर तेरा और तू हुई है बेखबर।
क्या यों ही बैठेगी तू आंखों पै पट्टी बांधकर ॥

कैकेयी—अरी निर्भाग ! तू क्या बोलने लगी ? ऐसे अवसर पर तो तुझे आनन्द मंगल गाना चाहिये भारी उत्सव मनाना चाहिये-

धर्म का प्यारा है जो, और देश का जो प्राण है।
वह बने राजा तो फिर हर एक का कल्याण है ।।

मन्थरा—जब तक तुम्हें अपने हित-अनहित को पहचान नहीं तभी तक ऐसी बातें सुनाती हो ? जब तक आगा-पोछा नहीं देख सकती तभी तक मन्थरा को दोष लगाती हो। रानी ! मैंने संसार देखा है, मुझे दुनियां के ऊंच-नीच का अनुभव है; मैं इस आनन्द बधाई का रहस्य जानती हूं; मुझे राम के राजतिलक में कोई गहरा भेद दिखाई दे रहा है ।:-

क्या खबर तुमको छिपा है क्या सुनहरी झोल में।
देख लोगी आप क्या है ढोल की इस पोल में ।।

कैकेयी—चुप पापिन ! यदि घर में भेद डालने वाली बातें कहेगी तो तेरी जिह्वा तालू से निकलवा दूंगी। यदि राम को दोष लगायेगी तो तुझे जीती ही अग्नि में जलवा दूंगी । :—

खुशी हो राम की तो राज, धन, दरबार, घर वारूं ।
भरत जैसे हजारों लाल अपने राम पर वारूं ।।

मन्थरा—क्यों न हो ! जब किसी की अशुभ घड़ी आती है तो उसकी बुद्धि ऐसी ही हो जाती है। मैं तुम्हारे हित की कहती हूं और तुम मुझे पापिन बताती हो, मैं तुम्हारा भगत बनाती हूं और तुम मुझे गालियां सुनाती हो। लो जाने दो, मुझे तो कुछ मिलने से रहा, मैं तो दासी की दासी ही रहूंगी। फिर तुम जानो और तुम्हारा काम ।

आज तुम जिसको समझती हो ढिटाई मेरी ।
कुछ समय बाद खुलेगी यह भलाई मेरी ।।

गाना

टेक—रानी बनी है क्यों अज्ञान होगा दुर्लभ जन्म बिताना ।

अन्तरा (१)—सारे सुख के ये भंडार—होंगे सपने के आकार।
फिर तू पछतावे हरबार, मेरा कहा नहीं जो माना ।।
रानी बनी है···

(२) क्यों तू बन बैठी गम्भीर, छूटे जब चुटकी से तीर;
फिर नहीं बने कोई तदबीर-दूभर होगा यत्न बनाना।।
रानी बनी है···

(३) तेरे साथ हुआ अन्याय, मुझ को चिन्ता तेरी खाय;
अवसर निकल हाथ से जाय, सारी उम्र पड़े पछताना।।
रानी बनी है···

(४) मैंने सच सच किया बखान, अब तू मान चाहे मत मान;
तेरे मिटने का सामान, तुझ को अब तक होश जरा ना।।
रानी बनी है···

कैकेयी—मन्थरा ! आज तो तू अनोखी सी बातें कह रही है। मेरी समझ में तेरा तात्पर्य बिल्कुल नहीं आया

मन्थरा—आ जायगा ! जब तू रानी से दासी बन जायगी तब सारा तात्पर्य समझ में आ जायगा ! भोली रानी ! तू राजा को क्या समझती है ? तेरे साथ घोर अन्याय होने वाला है; राजा ने एक भारी षडयन्त्र रच डाला है।:—

मिलेगा धूल में जीवन का साज जब तेरा।
तो याद आयेगा रानी ! तुझे कथन मेरा।।

कैकेयी—अरी मन्थरा ! अब तो तू यहां तक बढ़ने लगी कि राम के साथ महाराज पर भी सन्देह करने लगी। सच बता आज तूने कैसा जाल फैलाने का निश्चय किया है। अरी मूर्खा, क्या बुद्धि को बिल्कुल ही बेच डाला है ?

गाना सम्मलित कैकेयी-मन्थरा (लावनी)

कैकेयी—

कुब्जा ! कुटनी! पापिन ! डायन ! क्यों घर में आग लगाती है।
क्यों सूरज पर मिट्टी डाले ? अमृत में जहर मिलाती है ।।
दुष्टा ! इतना तो समझ जरा किस कुल का भोजन खाती है ।
उस कुल को ही हे दुर्भागिन ! तू नष्ट कराना चाहती है ।।

मन्थरा—

भोली रानी नादान न बन, बातों पर मेरी कान लगा !
अग्नि के अन्दर पांव न रख, छाती में न अपनी बान लगा ।।
दुश्मन हो अपनी चालों में, अफसोस तुझे फिर होश न हो ।
यह प्यार नहीं है धोखा है रानी ! रानी ! मदहोश न हो ।।

कैकेयी—

क्या कहती है निर्लज्ज बता, महाराज को मन से प्यारी हूं ।
उनके कारण ही सुख-वैभव और राजभोग अधिकारी हूं ।।
जिस राम को दोष लगाती है वह इन [illegible] का तारा है ।
इक जान है वह सौ जानों की प्राणों से मुझ को प्यारा है ।।

मन्थरा—

अच्छा जो प्यारा है तो सही, प्यारे का अपने प्यार भी देख ।
यह तेल जो तूने देखा है रानी अब इसकी धार भी देख ।।
बस मैं तो इतनी कहती हूं फिर मुझ को दोष नहीं देना ।
बूढ़ी मन्थरा निर्दोष हुई अब करना हो सो कर लेना ।।

कैकेयी—

दासी कैसी बातें कहती ? कुछ समझ नहीं कुछ ज्ञान नहीं ।
बन बैठी ऐसी मूर्ख तू क्यों ? अनहित-हित् की पहचान नहीं ।।
पति-पुत्र से ही जब प्रेम नहीं तो फिर जग में क्या रक्खा है ।
उनके सुख में नारी को सुख, उन के दम से ही दुनिया है ।।

मन्थरा—

हां दुनियां है, यह दुनियां है, यह स्वार्थ की सारी दुनियां है ।

हैं स्वार्थ के भाई, पुत्र पति सबके मन स्वार्थ की माया है ।।
जो स्वार्थ नहीं तो कुछ भी नहीं, सारी ममता मुँह देखी है ।
इस स्वार्थ की अन्धी दुनिया में क्यों स्वार्थ हीन तू बैठी है ।।

कैकेयी—

अच्छा मंथरा ! आगे को आ, बतला इस में क्या हानी है ?
जो भरत है सोई राम भी है दोनों में कौन लासानी है ?
इक आंख की दोनों पुतली हैं, इक दिल की दोनों आशा हैं ।
इक घर के दीपक हैं दोनों, इक वृक्ष की दोनों शाखा हैं ।।

मन्थरा—

रानी जो होनी है होगी, होनी होकर टल जायेगी ।
लेकिन तू मेरी बातों पर सिर पीट-पीट पछतायेगी ।।
यह राम जो तेरा प्यारा है और कुशल लाडला बेटा है ।
वह ही तुझको गाली देगा जो तुझ को माता कहता है ।।

कैकेयी—हां मन्थरा ! यह बात तो कुछ मन को लगती है, स्वार्थ के वश होकर नित नये रंग बदलती है ।

मन्थरा—यही तो मेरा तात्पर्य है । राज्य मिलने से पहले जो राम की दशा है वह बाद में कदापि न रहेगी, देख लेना कि तू सम्मान के बदले अपमान का कष्ट सहेगी !

कैकेयी—परन्तु इसमें महाराज का क्या धोखा है ?

मन्थरा—यदि धोखा नहीं तो भरत की अनुपस्थिति में ही राम को राजा क्यों बनाया जा रहा है ? ऐसे महान कार्य के लिये कल का दिन ही क्यों नियत किया जा रहा है ?

कैकेयी—हां ठीक है । तेरा विचार बिलकुल ठीक है किन्तु इस समस्या का सुलझना भी तो आसान नहीं !

आसान और बिल्कुल आसान ।

कैसे ? बता जल्दी बता ! जो कुछ तू कहेगी, मैं वही

करूंगी ।

मन्थरा—अच्छा तो सुनो ! जिस समय राजा दशरथ इन्द्र की ओर से शम्बरासुर के साथ युद्ध करने गये थे तो रथ का पहिया टूट जाने पर तुमने अपने हाथों का सहारा देकर महाराज की रक्षा की थी और उन्होंने तुम्हें दो वरदान देने की जबान दी थी ।

कैकेयी—हां ! ठीक है; वह सारा सम्वाद मुझे याद है ।

मन्थरा—तो बस, आज अपने उन्हीं वरदानों को मांग लो ! एक में भरत को राज्य और दूसरे में राम को चौदह वर्ष का बनवास!

कैकेयी—किन्तु राम को बनवास भेजने से लाभ ?

मन्थरा—रानी ! तू बहुत भोली है ! ये राजनीति की बातें हैं, इनमें बड़ी सावधानी से काम करना चाहिये । ऐसा न हो कि राम यहाँ रहें और भरत के राज्य में विघ्न डालें ।

कैकेयी—हां ! यह भी ठीक है ।

मन्थरा—परन्तु इतना ध्यान रखना कि राजा की चिकनी चुपड़ी बातों में न आ जाना, इन वरदानों को छोड़ कर किसी और बात पर न रीझ जाना ।

कैकेयी—नहीं, कदापि नहीं !

जान से जाऊ मगर छोड़ूं नहीं इक बार हट ।
देख लेना किस तरह से होगी पूर्ण नार हट ।।

मन्थरा—बस ! तो फिर तेरी ही जीत है !

कैकेयी—अच्छा अब मैं कोप भवन में जाती हूं ! और तिरया चरित्र का जाल फैलाती हूं ।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(कोप-भवन)

[कैकेयी काले वस्त्रों में पड़ी है, राजा आते हैं]

दशरथ—हैं ! यह कौन ? मैले वस्त्र पहने ! आभूषण बिसराये, बाल बखेरे किस दशा में लौलीन है ? ओह परमात्मा ! यह कोप भवन में लेटने का कौन सा दिन है ? (कैकेयी को देखकर) ओह ! प्यारी तुम हो ? बतलाओ, इस शोकजनक अवस्था का कारण, इस दुखमय दशा की वजह ?

किया है क्यों रंग तनका मैला, बिगाड़ा सारा श्रृंगार अपना।
उतार डाले हैं सारे भूषण, बदल दिया है व्यवहार अपना ।।
पड़ी हो उलझन में कौनसी तुम, मलीन शोभा है क्यों बदन की।
सुनादे सारी जो जी में आई, छिपा न मुझसे लगी को मनकी ।।

[कैकेयी चुप रहती है]

दशरथ—रानी ? क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि प्रातःकाल राम को राजतिलक होने वाला है। घर-घर में बधाई गाई जा रही है, नगरी की शोभा बढ़ाई जा रही है फिर तुम मंगल में अमंगल क्यों मना रही हो ? ऐसे शुभ अवसर पर यह दशा क्यों बना रही हो ?

राम जो प्यारा तुम्हारा है तुम्हारा प्राण है।
कल उसी के राज का होने चला सामान है ।।
आज इस आनन्द दिन पर दुःख पाना किस लिये ?
ऐसे शुभ अवसर पै यह अशगुन मनाना किसलिये ।।

[कैकेयी फिर भी शान्त रहती है]

दशरथ—हैं, प्यारी ! बोलती क्यों नहीं ? क्या तुम नहीं जानती कि मेरे प्राण, मेरा धन और मेरा कुटुम्ब सब तुम्हारे ऊपर बलि-

हार है फिर स्पष्ट बताओ कि तुम्हें क्या स्वीकार है ?:—

क्या किसी ने कह दिये हैं आज कुछ कड़वे वचन ?
या किसी की बात तुमको हो नहीं पाई सहन ?
पड़ गई बाधा कोई आराम के सामान में।
या कोई आई कमी राणी तुम्हारे मान में ।।
सच बताओ क्यों पड़ी हो आज मन मैला किये ?
जो कहो करदूं अभी संसार में तेरे लिये ।।

कैकेयी—(करवट लेकर)—

मत सुनो मन की व्यथा इसकी चिकित्सा ही नहीं।
कर सको उपचार जिसका रोग ऐसा ही नहीं ।।
क्या कहूं कैसे कहूं कहने से क्या परिणाम है।
है सरल सुनना मगर करना कठिन सा काम है ।।

दशरथ—क्या कहा ? कठिन काम है ! प्यारी ! क्या तुम्हारा कहा करना मेरे लिये कठिन काम है ?

क्या है संसार में जो तुझ से अधिक प्यारा हो ?
प्राण बलिदान करूं तेरी यदि इच्छा हो ।।

कैकेयी—हां, दिखावे की बातों पर तो सभी अकड़ जाते हैं; आकाश और रसातल एक कर दिखाते हैं; परन्तु समय पड़ने कर पीछे हटते ही नजर आते हैं :—

बड़ा अन्तर है राजन् बात कहने और करने में।
यह कह देते हैं मरता हूं,मगर मुश्किल है मरने में ।।

दशरथ—अच्छा, तो क्या मैं आज मिथ्याभाषी भी हो गया ? रानी! तुम क्या कहने लगी ? क्या अपने वचनों से फिर कर माथे पर कलंक का टीका लगाऊंगा ? झूठ बोलकर रघकुल की मर्यादा को मिटाऊंगा ?

सुनी जाती नहीं प्यारी ! ये मुझसे सिसकियां तेरी।
वही करने को हूं तैयार जो कहदे जबां तेरी ।।

सम्मिलित गाना

दशरथ—मानो मानो प्यारी, बात हमारी, क्यों करती मन भारी ?
कैकेयी—जाओ-जाओ न सताओ अपनी राह लो मैं हारी !
दशरथ—इक बार तो मुंह से कह दो क्या दोष है मेरा भारी ?
कैकेयी—मैं कौन आपकी होती ? कहते हो किसको प्यारी ?
मानो मानो प्यारी……

शेर-दशरथ—राज है, घर है, कुटुम्ब है, सम्पदा है बेशुमार।
जान है, दिल है, जिगर है, सब तेरे ऊपर निसार॥
कैकेयी—क्यों कहो मैं जानती हूं आपको कितना है प्यार।
प्यार की बातें हैं मुंह में और बगल में है कटार॥
दशरथ—मत सता, मत जुल्म कर आहें न भर प्यारी मेरी।
रूठकर मुझसे किया चाहे है क्यों ख्वारी मेरी॥
कैकेयी—जाओ बस रहने भी दो करते हो क्यों ख्वारी मेरी।
क्या कहूं और क्या करोगे दूर दुशवारी मेरी॥
दशरथ—इक बार तो मुख से कह दो क्या दोष है मेरा भारी।
कैकेयी—मैं कौन आपकी होती कहते हो किसको प्यारी ?
मानो मानो……

कैकेयी—बस महाराज ! मुझे सब ज्ञात है कि तुम मुझे कितना प्यार करते हो ! वास्तव में मेरे प्रेमी हो या केवल सांसारिक व्यवहार करते हो।

समय आने पै खुलती है परीक्षा प्रेम होने की।
कसौटी पर ही होती है परख बेमैल सोने की॥

दशरथ—तो परख लो ! मेरे प्रेम को अपनी परीक्षा रूपी कसौटी पर परख लो :—

सभी तन मन भवन अपना तेरे इक प्रेम पर वारा।
छिपा लूं जिसको देने से है क्या संसार में प्यारा॥

तेरी जग में किसी वस्तु से समता हो नहीं सकती ।
तेरे आगे तो प्राणों की भी ममता हो नहीं सकती ।।

कैकेयी—निस्सन्देह ! यदि आपको अपने वचनों का पास हो जायगा, तो मुझे अवश्य विश्वास हो जायगा :—

मालूम है, है राम पर हित आज तुम्हारा ।
है राम प्राण आपके, आंखों का सितारा ।।
चिन्ता यदि है आपको, कुछ मेरे काम की ।
खाजाओ मेरे सामने सौगन्ध राम की ।।

दशरथ—रानी ! यह तुम्हारा मिथ्या विचार है, क्या तुम समझती हो कि मेरा झूठा व्यवहार है :—

तजे आकाश तारागण, तजे सूरज दिशा अपनी ।
तजे गम्भीरता सागर, तजे ठंडक हवा अपनी ।।
हिमालय का बने रज-कण, कहें मोती जो पत्थर को।
अनल हो चांद से पैदा, बहे गंगा भी उत्तर को ।।
हिरण खेलें महासागर में, जल की मछलियाँ थल में ।
न फूलों में सुगन्धि हो, न शीतलता रहे जल में ।।
दिशाएं देखती हैं, देखते हैं महल ये सारे ।
मही, आकाश, पर्वत साक्षी हैं चान्द और तारे ।।
कहा इक बार जो अन्तिम मेरा वह ही वचन होगा।
कसम है राम की दशरथ नहीं मिथ्या-कथन होगा ।।

कैकेयी—(खड़ी होकर) धन्य हो महाराज ! वीरों की यही आन है, क्षत्रियों की यही पहचान है । सुनिये ! जिस समय आप इन्द्र की ओर से शम्बरासुर से युद्ध कर रहे थे, तो आपने मुझे दो वर देने को कहा था ।

दशरथ—कहा था ! वह हमें खूब याद है ।

कैकेयी—तो वही मेरी धरोहर मुझे वापस दीजिये !

दशरथ—हां-हां ! कहो-कहो ! क्या चाहती हो ? जल्दी बोलो ! उसके लिये इतना आडम्बर रचाने की क्या आवश्यकता थी ? वह तो तुम्हारा अधिकार ही है ।

कैकेयी— गाना (लावनी)

दोहा—आज मुझे मंजूर हैं, लेने वे वरदान ।
विचलित हो जाना नहीं, रखना एक जबान ।।

समझूंगी तब मैं सच्चे हो जब मुझ को यह वरदान मिले ।
वंचित हो राम, भरतको ही यह राजतिलक, सम्मान मिले ।।
जो वस्त्र हैं साधू-सन्तों के वे राम करें धारण तन में ।
त्यागी हों चौदह वर्षों को विश्राम करें जाकर वन में ।।
बस ये ही दो वरदान मेरे जो कुछ-था साफ उचारा है ।
पूरे कर दो तो अच्छा है इस में उपकार तुम्हारा है ।।

दोहा—बार-बार होती नहीं, राजाओं की आन ।
सच्चे वीरों का कुशल, हो जग में सम्मान ।।

दशरथ— गाना (लावनी)

दोहा-हे पापिन इस राज पर क्यों करती अन्याय !
बदले ये किस पाप के लेने बैठी हाय !!

सब आयु बीती विपता में ये कुंवर अभी तो पाये थे ।
तू अग्नि बनकर फूंक गई फल फूल अभी जो आये थे ।।
जिस तरह अविद्या योगी का सब योग नष्ट कर देती है ।
सच कहा है कुल्टा उसी तरह आनन्द-हर्ष हर लेती है ।।
जिस तरह कि विष वाली सुन्दर नागिन का पास नहीं अच्छा ।
इस तरह से लोगो तिरिया का जग में विश्वास नहीं अच्छा ।।
यह वह पापिन है जो पाले बस उसको ही खा जाती है ।
वह विषधर काली नागिन है अमृत पी जहर उगाती है ।।

कैकेयी—क्यों महाराज ! होश क्यों जाते रहे ? सुनते ही कलेजे में बाण सा क्यों लग गया ? क्या रघुकुल की मर्यादा झूठी हो

गई ? क्या हरिश्चन्द्र और दलीप की याद मिट गई ?

नहीं शक्ति थी जो वरदान के देने दिलाने की।
पड़ी थी क्या तुम्हें फिर राम की सौगन्ध खाने की ।।
बहाने ढूंढते फिरते हो क्यों इक बार हां देकर ?
बनाते हो वचन झूठा मुकरते हो जवां देकर ।।

दशरथ—धिक्कार है ! दुर्बुद्धि, मलीन आत्मा स्त्री तुझे धिक्कार है!

कैकेयी—हां धिक्कार है ! वचन पूरा करने का समय आया तो धिक्कार है! वरदान देने को कहा तो धिक्कार है ! महाराज!

कलेजा चाहिये पूरा वचन करके दिखाने में।
नहीं जब मन में साहस है तो क्या शेखी जताने में ।।

दशरथ—कुल्टा ! आज तूने इतना भयंकर रूप क्यों धारण कर लिया है ?

देख अन्यायी न बन आखिर तो मेरी नार है।
काल बनकर क्यों मुझे खाने को तू तैयार है ।।

कैकेयी—बस-बस, देख लिया आपका साहस ! ज्ञात हो गई आप की प्रतिज्ञा ! थोड़ा सा काम पड़ने पर ही ठण्डे-ठण्डे सांस लेनें लगे ! जब कुछ और उपाय न सूझा तो स्त्रियों को ही दोष देने लगे ।

दशरथ—रानी ! क्या तू वास्तव में ऐसी कठोर बन गई ? क्या तेरा हृदय ऐसा अन्यायो हो गया ? नहीं-नहीं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि तूनें कुछ हंसी की है,कोई गम्भीर दिल्लगी को है । प्यारी! तू मेरी अर्धांगिनी है, मेरे सुख-दुख की साथी है :—

मांगता हूं भीख बस इतना कहा मंजूर कर।
प्राण तक लेले मगर तू राम को मत दूर कर ।।

कैकेयी—नहीं, कदापि नहीं ! या तो राम तपस्वी का वेष बनाकर वनों को जाएंगे और या राजा दथरथ मुझे अपने हाथ से चिता में जलाएंगे ।

दशरथ—आह ! हे दूध पीकर जहर उगलने वाली नागिन ! आखिर

राम ने तेरा क्या बिगाड़ा है ? अरी कुल्टा, वह तो तुझे सब से अधिक प्यारा है। निर्भागिन ! इस कष्ट को मैं कैसे सहन करूंगा ? राम के बिना कैसे जीवित रह सकूंगा ? याद रख ओ निर्दयी, याद रख !

गाना

इस वंश के अब नाश में केवल पलों की देर है।
रघुकुल को दीपक बुझ चला बस राज्य में अन्धेर है ।।
जिस घर में सुन्दर कामिनी, गाती थीं मंगल रागनी।
उस घर में हो अब पापिनी, शमशान जैसा ढेर है ।।
जीवन की रजनी में अहा! चमका था इक तारा जरा।
वह छिप गया तो फिर सदा अंधेर ही अंधेर है ।।
जिस में कुशल वहती पवन, कलियां खिलीं फूले सुमन।
वह बाग मुरझाया सा वन, यह भाग्य का ही फेर है ।।

कैकेयी—बस रहने दीजिये ! राम भी सीधे हैं, कौशल्या भी सीधी है और आप भी सीधे हैं, किन्तु जो कुछ कह चुकी हूं उसे नही लौटा सकती ! आप कुछ भी कहें परन्तु मैं आपकी चाल में नहीं आ सकती !

सुन चुकी हूं बहुत कुछ राजन् बहाने आप के।
है कपट मन में, वचन लेकिन सुहाने आपके ।।

दशरथ—लुट गया ! हे कुल घातिनी डाइन ! मैं अच्छी तरह लुट गया ! दुष्टा ! यह तूने क्या विचारा है ? मेरी आशाओं का उपवन क्यों उजाड़ा है ?

गाना

टेक— नहीं है अच्छा यह व्यवहार !
अन्तरा (१) राम गमन बन को करें तो हो कैसे सन्तोष ?
प्राण पखेरू उड़ चलें और लुटे अवध निर्दोष ।

मिटे सब जनता का आधार-नहीं है अच्छा ···

(२) रिस को त्यागो क्रोध तजो और साजो मंगल साज।
निश्चय ही जब तू कहे तो देदूं भरत को राज॥
मेरे हैं दोनों प्राणाधार-नहीं है अच्छा············

(३) जल बिन मछली रह सके और कुशल पति बिन नार।
राम बिना जीवन मेरा, है एक घड़ी दुशवार॥
लगे सूना सारा संसार, नहीं है अच्छा······

आह ! अग्नि व्याप रही है, हृदय जल रहा है, अन्धकार छा रहा है; मृत्यु का दृश्य सामने आ रहा है ! ओह !

आंख में ज्योति नहीं, दिल पर मेरा काबू नहीं।
कह रहा है कोई कानों में कि दशरथ तू नहीं॥

कैकेयी—क्यों महाराज ! क्या मन अधिक व्याकुल हो रहा है ?

दशरथ—देख ! हे कुल-कलंकिनी इधर देख ! महा अधर्मिन ! इस ओर देख ! आज दशरथ अपने कर्त्तव्य पालन के लिये विदा हो रहा है; यह प्राण पखेरू तेरी कुटिलता से हवा हो रहा है:—

जा रहा हूं आज दुनिया से सदा के वास्ते।
घर हुआ बरबाद मेरा सर्वदा के वास्ते॥
मिट गया इस पापिनी की मामता के वास्ते।
नाश अपना कर लिया इस बेवफा के वास्ते॥
सांप पाला आस्तीं में आप अपनी हान की।
हो गई वरदान के ही साथ ग्राहक जान की॥

कैकेयी—वाह महाराज ! क्या इसी बिरते पर इतना जोश दिखाते थे ? जबान के ही घोड़े दौड़ाते थे ? याद कीजिये ! जरा अपने पूर्वजों की ओर भी ध्यान दीजिये !

गाना (लावनी)

दोहा—हरिश्चन्द्र ने किस तरह रक्खा कुल का मान।
राजा शिवि ने आन पर कैसे त्यागे प्राण॥

क्या सगर, दधोची, भागीरथ का मान यही हे राजन है ?

क्या यही सूर्यकुल की नीति और मर्यादा का पालन है ॥
मेरे दोनों वरदानों का जो देना तुमको भारी है।
कहदो हमने यह कहा नहीं क्या कहने में दुशवारी है ॥
पर काम नहीं यों चल सकता, बातों में ही बहकाते हो।
वचनों को अपने भूल गये कुलमान-मान चिल्लाते हो ॥
हां याद रहे यह भी राजन् ! जो कुशल वीर कहलाते हैं।
प्राणों को देकर प्राणों पर वे अपना वचन निभाते हैं ॥

दशरथ—आह ! दुष्टा ! बस शान्त होजा, जोशीले को अधिक जोश न दिला। याद रख तू मुझे ही नहीं उजाड़ती है, अपने पैरों पर भी आप ही कुल्हाड़ी मारती है ! खैर ! तू जान और तेरा काम !

आज अर्पण है तुझे सुख-सम्पदा भी मान भी।
ले यदि लेना ही है, वरदान भी और प्राण भी ॥

[मूर्छित हो कर गिर जाना]

कैकेयी—महाराज ! इतने व्याकुल क्यों हुए जाते हो ! क्या शूरवीर कहलाकर एक साधारण सी बात से घबराते हो ?—

जो दानी सत्यवादी हैं न संकट में झिझकते हैं।
वचन का पास है जिनको वे कब रोते बिलखते हैं ॥

दशरथ—(होश में आकर) न सता ! हे नाश कारिणी ! अभागे दशरथ को अधिक न सता; मेरे दुखी हृदय को और दुखी न बना ! याद रख ! यह सुहावनी अयोध्या भी बसेगा; संसार में राम की बड़ाई भी फैलेगी; भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सब अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे, मेरा शोक भी प्राणों के साथ समाप्त हो जायगा; परन्तु तेरा यह कलंक, तेरा यह कुलघातिनी नाम सदैव के लिये इतिहास में लिखा जायगा; तेरा जीवन घृणा की दृष्टि से देखा जायगा। मैं जानता हूं कि जिस प्रकार सिंह दूसरे का मारा हुआ शिकार नहीं खाता है; उसी प्रकार भरत भी तेरे द्वारा प्राप्त किया हुआ राज्य

नहीं चाहता है। हाय राम ! हाय राम !

दासी—(आकर) महारानी जी ! मन्त्री जी आना चाहते हैं !

कैकेयी—आने दो !

[सुमन्त जी का प्रवेश]

सुमन्त—हैं ! अन्धेरी रात में जगमगाने वाले शीश-महल की यह दशा ! आंखों को चकाचौंध करने वाले राजभवन की यह अवस्था ! विधाता खैर तो है। :—

छा रही है इक निराशा सी भरे घर बार पर।
दे रहे अशगुन दिखाई भवन के आकार पर ।।
शोक में डुबा हुआ आता नजर सारा महल।
हे प्रभु ! इक रात में ही हो गया कैसा बदल ।।

(अन्दर जाकर) हैं ! सूर्य उदय होने वाला है और राजभवन में धीमा-धीमा दीपक टिमटिमा रहा है; चारों ओर निराशा का अन्धकार छा रहा है। (दशरथ को देखकर) ओहो ! ये तो महाराज भी पृथ्वी पर पड़े हुए बिलबिला रहे हैं और राम ही राम की रट लगा रहे हैं।

सिरपेंच कहीं और ताज कहीं बिखरे माला के दाने हैं।
कुछ होश नहीं तनका इनको और गम की चादर ताने हैं ।।
आभूषण सब बिसराये हैं और शोक का है श्रृंगार किये।
आंखों में छलकते हैं आंसू ये क्या अशगुन करतार किये ।।

(कैकेयी से) महारानी जी ! आपने कैसा स्वरूप बनाया है ? और महाराज को किस सन्ताप से जलाया है ?

कैकेयी—मन्त्री जी ! पहले राम को बुला लाइये फिर सब ज्ञात हो जायगा !

सुमन्त—जैसी आज्ञा। (जाना)

दशरथ—हे सूर्यवंश के गुरु सूर्य ! आज उदय न होना; अयोध्यापुरी

की दुर्दशा को देखकर आपको बड़ा ही दुःख होगा! हे आकाश में चमकने वाले तारो ! अपनी आंखें बन्द कर लो ! आज तुम दशरथ की निराशा को न देख सकोगे ।

पवन के सामने का एक बुझता सा दिया हूं मैं ।
प्रलय की आग में अब आप ही गिरने चला हूं मैं ।।
मेरी विनती है तुम मत देखना दशरथ अवस्था को,
निकल आयेंगे आंसू देखकर लुटती अयोध्या को ।।

[सुमन्त और राम का आना]

राम—पिता जी ! पिता जी ! आज यह कैसी दशा है ?:—

कभी आंसू निकलते हैं, कभी आहें निकलती हैं ।
कभी कुछ होंट हिलते हैं, कभी आंखें उबलती हैं ।।
हुए व्याकुल बिसारी सारी सुध-बुध आज निज तन की।
बताओ शोक क्या तुम को जो ऐसी दुर्दशा मन की ।।

(कुछ रुक कर) आह ! बोलते भी नहीं ! कोई महान दुःख है। ये तो मुझे देखते ही गले से लगा लेते थे और संसार के सारे दुःख भुला देते थे। माता जी ! आप ही इसका कारण बताओ ! आप ही मेरे मन की शंका मिटाओ ।

कंकेयी—बेटा ! महाराज ने मुझे दो वरदान दिये हैं। एक में भरत को राज और दूसरे में तुम्हारे लिए चौदह वर्ष का वन-वास ।

राम—अहो भाग्य ! यह तो बहुत ही अच्छी बात है ! इसके कारण इतना दुख मानने की कौनसी बात है !

गाना (लावनी)

दोहा—हे माता ? संसार में, यों तो पुत्र अनेक ।
सेवक जो मां-बाप का, पुत्र वही बस एक ।।

ये अहो भाग्य मेरे माता ! जो राज भरत जी पाते हैं ।
ऐसे अवसर तो जीवन में बस कभी कभी ही आते हैं ।।
हम पुत्र है सच्चे क्षत्री के अपने सत्धर्म पै निश्चल हैं ।

दुख हम को एक यही माता क्यों पिता हमारे व्याकुल हैं ।।
बन गमन करूं निज इच्छा से इसका तो तनिक हिरास नहीं ।
इस बात के कारण इतना दुख इसलिये मुझे विश्वास नहीं ।।
राजा तो धीरज वाले है फिर इनको इतनो बेजारी ।
निश्चय यह कुशल हुआ मन को अपराव हुआ मुझ से भारी ।।

बार-बार सौगन्ध है, तुम को मेरी मात ।
ठीक-ठीक हमसे कहो, जो कुछ गुजरी बात ।।

कैकेयी—बेटा ! मैं सच कहती हूं कि इसके अतिरिक्त और कोई बात नहीं । जब से बनवास का नाम सुना है तभी से तुम्हारे प्रेम के कारण व्याकुल हो रहे हैं ।

राम—तो क्या मैं पिता जी से स्वयं बातें कर सकता हूं ?

कैकेयी—नहीं बेटा ! इन्हें अधिक कष्ट पहुंचाना ठीक नहीं । बस तुम अपने पिता के वचनों को निभाओ और भगवे वस्त्र धारण करके शीघ्र ही बनों को चले जाओ ।

राम—जैसी आज्ञा माता जी !

दशरथ—हाय राम ! हाय राम !

मन्त्री—महाराज ! रामचन्द्र जी आ गए हैं ।

राम—पिता जी प्रणाम ।

दशरथ—(गले लिपटा कर) अहा बेटा !

गिरी छाती पर बिजली और दिल में आग जलती है ।
पड़ा सिर पर पहाड़ और आंख से सरिता उबलती है ।।
मेरी आशाओं की दुनियां में अब अन्धेर छाया है ।
मेरे आबाद घर को हाय ! दुष्टा ने मिटाया है ।।

राम—शान्त ! पिता जी शान्त !

दशरथ—राम ! राम, मेरी आंखों की ठण्ठक और दिल के आराम! बेटा ! तुम फिर कभी इस अभागे की सूरत नहीं देखोगे ।

तुम क्या कहोगे ? अपने हाथों से पाला, अपनी आंखों में रक्खा और अब आप ही बनों को भेज रहा हूं। अफसोस ! बेटा ! मैं कैसे जीऊंगा ?:—

तेरी छाया मेरी माया—तेरा दर्शन मेरा जीवन।
तेरी ही ज्योति आंखों में तेरा यौवन मेरा तन मन ।।
दिखाई कुछ नहीं देता मुझे तुझ बिन जगत भर में।
तेरे इस चन्द्र मुख से ही उजाला है मेरे घर में ।।

राम—पिता जी ! शोक और सन्ताप को दूर कीजिए। प्रसन्न मुख हो कर आज्ञा दीजिए। मैं आपके वचनों का पालन करने में बड़ा सुखी हूं :—

है पुत्र वह जो सच्चा मां बाप का पुजारी।
मेरी खुशी है उसमें जिसमें खुशी तुम्हारी ।।

दशरथ—अहा ! परमात्मा !

बुरी दृष्टि से देखे चाहे सब संसार जीवन को।
गिरे आकाश से बिजली जलादे राज को धन को ।।
महीनों चाहे हो जायें मुझे अन्न जलके दर्शन को।
परन्तु राम मुझको छोड़कर जाये नहीं बन को ।।

कैकेयी—बेटा ! जब तक तुम इनके पास बैठे रहोगे इन्हें सन्तोष नहीं आएगा, इनका क्लेश बढ़ता ही जाएगा ; इसलिए शीघ्र जाकर माता कौशल्या से आज्ञा ले आओ और भगवे वस्त्र धारण करके बनों को चले जाओ।

राम—जैसी आज्ञा माता जी ! (जाना)

दशरथ—हाय राम ! हाम राम !

मेरा आनन्द लूटा हाय दुष्टा ने बहाने से।
चला है हस उड़कर हाय अब अपने ठिकाने से ।।

[मूर्छित हो जाना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(कौशल्या का महल)

राम—(आकर) माता जी प्रणाम !

कौशल्या—चिरन्जीव रहो पुत्र ! आओ पहले कुछ भोजन पालो और फिर आनन्द से राजगद्दी सम्भालो ।

राम—बस माता जी ! खाने पीने की क्षमा कीजिये और शीघ्र वन गमन की आज्ञा दीजिये ।

कौशल्या—हैं ! यह क्या सुनाई ? इसने ने तो मेरी सुध-बुध ही बिसराई !

राम—हां माता जी ! अब राज के बदले राम की बन को तैयारी है, इसलिये यहां ठहरना पल-पल भारी है ।

गाना

मिल गई आज्ञा मुझे अब बन-गमन के वास्ते ।
छोड़ता हूं इस नगर को निज-परण के वास्ते ।।
दी भरत को राजगद्दी आज से महाराज ने ।
बन-गमन मुझको दिया अपने वचन के वास्ते ।।
शोक मेरे बिन कभी पाना न हे माता मेरी ।
काट कर चौदह बरस आऊं मिलन के वास्ते ।।
जिन को है सन्तोष वे संकट से घबराते नहीं ।
है महा आनन्द दुख में सन्त जन के वास्ते ।।

कौशल्या—आखिर ऐसी क्या बात हुई ? मुझे खोलकर तो बताओ ।

राम—सुना है किसी समय पिता जी ने माता कैकेयी को दो वरदान दिये थे । सोई आज माता जी ने एक वरदान में भरत को राजतिलक और दूसरे में मेरे लिये चौदह वर्ष का बनवास मांग लिया है ।

कौशल्या— अफसोस !

गाना

उदय होकर मेरा सौभाग्य-तारा मन्द आया है।
चमकता सूर्यकुल का चान्द राहू ने दबाया है॥
न यह मालूम था मुझको कि यह सकट भी आएगा।
विधाता ने बुढ़ापे में यह कैसा दुख दिखाया है॥
हुआ था बाद मुद्दत के उजाला मेरे आंगन में।
चला झोंका पवन का हाय वह दीपक बुझाया है॥
समझती थो कि अब सुख-संपदा की मैं भी हूं भागी।
गिरी आकाश से बिजली कुशल साधन जलाया है॥

राम—माता जी ! महाराज की आज्ञा मेरे और आप के लिये शिरोधार्य है, इसलिये अब बन को जाना ही अनिवार्य है।

कौशल्या—अच्छा बेटा ! यदि महाराज ऐसा ही चाहते हैं, तो मैं कब रोकती हूं। किसी का कोई दोष नहीं केवल अपने भाग्य को कोसती हूं। अच्छा जाओ ! और पिता के वचनों का पालन करो।

[सीता जी का प्रवेश]

सीता जी—माता जी प्रणाम ! स्वामी को कैसी आज्ञा दे रही हो।

कौशल्या—क्या बताऊं बेटी ! कैसे बताऊं ? मेरी वाणी में इतनी शक्ति कहां जो तुम्हें यह समाचार सुनाऊं।

सीता जी—तो प्राणनाथ ! आप ही बताइये। आप ही मेरी उलझन को मिटाइये।

राम—प्रिय ! बात बहुत साधारण है। इन का दुखी होना तो व्यर्थ सा जान पड़ता है।

सीताजी—फिर भी ! जरा मैं भी तो सुनूं।

राम—प्रिय ! किसी समय माता कैकेयी ने महाराज से दो वरदान

पाए थे; आज उन्होंने भरत के लिए सिंहासन और मेरे लिये बन-गमन मांग लिया। बस इतनी सी बात है :—

पिता आज्ञा से मुझको बन में जाना ही जरूरी है।
जबां से जो कहा उसका निभाता भी जरूरी है ॥

सीता जी—निस्सन्देह ! :—

जबां से जो कहा उसका निभाना भी जरूरी है।
परन्तु साथ में दासी का जाना भी जरूरी है ॥

गाना

टेक—मैं भी संग चलूंगी नाथ ! हूं मैं चरणों की अधिकारी।

अन्तरा (१) बन को जाते हैं जब राम-फिर क्या रहा मेरा यहां काम?
मुझको सारे ये आराम, लगते हैं विष भरी कटारी ॥
मैं भी संग......

(२) स्वामी सत्य हैं मेरे बैन, प्यासे बिन दर्शन के नैन।
मुझको चरणों में ही चैन, तुम बिन जीवन मेरा भारी ॥
मैं भी संग......

(३) मेरा जीवन का है साथ, दासी चरणों की हूं नाथ।
मुझको छोड़ अकेले जात, यह क्या मनमें आज विचारी ॥
मैं भी संग......

(४) करती हाथ जोड़ अरदास, मेरी पूरी कर दो आस।
रहना मुझे तुम्हारे पास, लेली मैंने शरण तुम्हारी ॥
मैं भी संग......

राम—प्यारी ! तुम व्यर्थ हट करती हो, मेरे साथ बनों में जाकर क्यों दुख भरती हो।

गाना

जाओ न तुम कठिन है बनों का प्रिय गमन।
होगा न तुमसे प्यारी ! कभी कष्ट वह सहन॥

सीते ! तुम्हारे वास्ते मजबूरी कुछ नहीं ।
मुझको तो है निभाना महाराज का वचन ।।
सेवा करो कि सेवा बड़ों की ही लोक में ।
कल्याणकारी, कष्ट निवारण है दुख हरण ।।
मत हो अधीर जानकी धीरज से काम लो ।
चौदह बरस के बाद कुशल होगा फिर मिलन।।

सीता जी—नाथ ! जिस प्रकार जीव के बिना शरीर और जल के बिना सागर शोभा हीन होता है, उसी प्रकार पति के बिना स्त्री का जीवन दुखी और मलीन होता है । यदि मैं आपके चरणों से अलग हो जाऊंगी तो सच मानिये कि महान दुख पाऊंगी ।

गाना

बिना आपके यहां गुजारा नहीं है ।
शरण के सिवा कुछ सहारा नहीं है ।।
करूंगी मैं आराम पृथ्वी पै सुख से ।
मुझे चैन महलों का प्यारा नहीं है ।।
न स्वादिष्ट भोजन की मन में है इच्छा।
सकल भोग पर चित्त हमारा नहीं है ।।
यह वैभव यह माया इन आभूषणों का ।
कभी ध्यान मन में विचारा नहीं है ।।
सभी तुच्छ वस्तु कुशल हैं नजर में ।
यदि एक दर्शन तुम्हारा नहीं है ।।

राम—प्रिय ! जैसे आमों के बाग में रहने वाली कोकिल बन में महा दुख पाती है, उसी प्रकार राजभवन को छोड़कर कोमल स्त्री भी पछताती है ।

सम्मिलित गाना राम-सीता (तर्ज—जाओ दिलबर दिल)

अन्तर, राम — वनवास में विपता भारी, क्यों हट करती हो प्यारी ।

अन्तरा—छाड़ के जाना हम को सम्पदा सारी ।।
„ **सीता**—मुझ को तो प्यारी स्वामी सूरत तुम्हारी ।
राम—बनवास में विपता……

शेर राम—कहीं है रस्ता टेढ़ा, कहीं कंकर कहीं पत्थर।
इधर यह तन महा कोमल उधर जंगल महा दुस्तर ।।
„ **सीता**—कठिन वह रास्ता कैसा ? कहाँ कँकर कहाँ पत्थर।
जहां पर आप के चरणों के दर्शन का मिले अवसर ।।
अन्तरा राम—खाना मिलेगा वहां फूल फुलारी !
„ **सीता**—मुझ को नहीं है स्वामी वह भी दुखारी ।।
राम—वनवास में विपता……

शेर राम—न ये आराम महलों के न यह बिस्तर बिछौना है।
न ये सामान हैं सुख के नगन भूमि पै सोना है।।
„ **सीता**—मुझे स्वीकार बिन दर्शन नहीं महलों में सोना है।
तुम्हारी चरण-सेवा ही मेरा बिस्तर बिछौना है ।।
अन्तरा राम—बन के रहन में प्यारी जीवन हो भारी।
सीता—आप के होते मुझ को सब है सुखारी ।।
राम—वनवास में विपता……

सीता—प्राणनाथ ! यदि आपको यह विश्वास हो कि चौदह वर्ष के पश्चात आप मुझे जीवित पायेंगे तो अवश्य छोड़ जाइये, नहीं तो अपने साथ ले चलिये ।

तुम्हें बाधा नहीं होगी सिया के साथ जाने में ।
मेरा भी हाथ होगा आपका संकट बटाने में ।।

कौशल्या—बेटा ! यह कदापि नहीं मानेगी । जानकी अपने पतिव्रत धर्म का अवश्य पालन करेगी, इसलिये इन्हें भी साथ ले जाना ही उचित है ।

राम—हां, मुझे भी ऐसा ही विश्वास है। अच्छा प्रिय! जैसी तुम्हारी इच्छा।

सीता—उपकार! प्रभो! महा उपकार! (कौशल्या के पैर पकड़ कर) अच्छा माता जी! आशीर्वाद दीजिये और बनों में पति-सेवा करने की आज्ञा कीजिये।

कौशल्या—अवश्य जाओ बेटी! अपना पतिव्रत धर्म अवश्य निभाओ। यद्यपि इस समय मुझे महान क्लेश है किन्तु धर्म पालन के लिये तुम्हें आनन्द मन से विदा करती हूं। विधाता तुम्हें कुशल से रखें!

गाना (तर्ज—पड़ी नार गौतम यह दुख की दुखारी)

चलो जाओ भगवान रक्षक तुम्हारा,
वही बेसहारों को देगा सहारा।
टलेंगी कभी तो निराशा की घड़ियां,
मिलेगा कहीं डूबतों को किनारा।
पती की शरण में गती है सती की,
उसे छोड़ मिथ्या जगत का पसारा।
सुनो हे प्रभो, दीन की प्रार्थना भी॥
निराशा में निर्बल ने तुम को पुकारा।
समय पर 'कुशल' पूर्वक लौट आवे,
सहित जानकी के दुलारा हमारा॥

लक्ष्मण—(आकर) भ्राता जी! मुझे आपके बन गमन का समाचार मिल चुका है; क्या अकेले ही जाने का विचार है?

राम—नहीं भाई! जानकी भी साथ चलने को तैयार है।

लक्ष्मण—और यह सेवक!

राम—भाई, तुम अभी बालक हो। बन का कठिन जीवन कैसे बिताओगे? राजभवन को छोड़कर बहुत दुख पाओगे। इस लिए मेरा कहना मानो और माता-पिता की सेवा में ही

कल्याण जानो ।

लक्ष्मण—महाराज ! आपका उपदेश बड़ा हितकारी है, किन्तु आपके बिना लक्ष्मण का अयोध्या में रहना बहुत भारी है । हे नाथ ! मेरे तो मात-पिता बन्धु-सखा, स्वामी और रक्षक सब आप ही हैं :—

इन्हीं चरणों की सेवा में मुझे आनन्द दूना है ।
यदि तुम हो तो सब कुछ है नहीं तो घर भी सूना है ।।

राम—प्यारे लक्ष्मण ! तुमने यह भी विचारा है कि अयोध्या का क्या सहारा है ?

लक्ष्मण—महाराज !

जगत में मैंने तुम को ही पिता अरु मात समझा है ।
जहां तुम हो वहीं भ्राता! मेरी प्यारी अयोध्या है ।।

गाना

टेक—चलूं मैं भी भ्राता बन को ।

अन्तरा (१) सेवा में स्वामी की रहता हरदम आज्ञाकार ।
अवध नगर से जब स्वामी के जावें चरण सिधार ।
नहीं यहां रहना लक्ष्मण को, चलूं मैं भी……

(२) जहां तुम्हारा वास हो, बस वहीं मुझे आराम ।
बिन सवा चरणों की स्वामी, है जीवन निष्काम ।।
तरस जाऊंगा दर्शन को, चलूं मैं भी……

(३) दुस्तर बन है राह है टेढ़ी और जंगल दुश्वार ।
मार्ग में चलते-चलते जब भी हो जाओ लाचार ।।
दबाऊं स्वामी चरणन को, चलूं मैं भी……

(४) माता मेरी सिया जानकी चलें आपके संग ।
बन की रीति नहीं है देखी कोमल इनके अंग ।।

करूं हलका बन भरमण को, चलूं मैं भी......

राम—भाई ! तुम मेरा कहना मानो और बनों में जाकर व्यर्थ कष्ट उठाने की न ठानो ।

गाना

भ्राता लक्ष्मण, बन का भरमण, तुमसे होना भारी है ।
संग हो होते, सुख को खोते, ऐसी क्या लाचारी है ॥
धूप पड़े और नग्न है भूमि चलना नंगे पैरों होगा ।
बन है निर्जन, रूखे भोजन, पीने को जल खारी है ॥
माल खजाना होगा बेगाना, महल अटारी सब छूटेंगे ।
गम की घटा हो, शीश जटा हो, रैन महा दुखकारी है ॥
कौन सुनेगा दीन दुखी जनता का रोना हाय कुशल !
यह तो बेचारी, है दुखयारी, आप ही कर्मों मारी है ॥

लक्ष्मण—भ्राता जी ! मैं आपकी आज्ञा पर प्राण तक देने को तैयार हूं परन्तु यह बात मानने से लाचार हूं । यदि मैं जानता कि आपका वियोग किसी प्रकार भी सहन कर सकता हूं तो इतनी हट कदापि न करता और आप की आज्ञा के बाहर पग न धरता :—

गये जब आप ही बन को तो सुख का कौन साधन है ।
तुम्हारे बिन प्रभु मेरा न मंगल है न जीवन है ॥

राम—प्यारे लक्ष्मण ! मैं जानता हूं कि तुम संसार में सबसे अधिक मुझ पर श्रद्धा रखते हो, परन्तु भाई भरत और शत्रुघ्न की अनुपस्थिति में अयोध्या को किस का सहारा होगा ! माता सुमित्रा का किस प्रकार गुजारा होगा ।

इधर व्याकुल पिता होंगे उधर मात दुखी होगी ।
करेंगे शोक नर नारी सकल जनता दुखी होगी ॥

लक्ष्मण—प्रभो ! मैं पहले ही कह चुका हूं कि संसार दुख का भण्डार

है; यहां कैसा प्रेम और किस का प्यार है। सारे जीव स्वार्थ के साथी हैं, मेरे तो केवल आप ही नाती हैं। याद रखिये !

छोड़ कर मुझको यदि भगवान बन को जाएंगे।
मैं अयोध्या में रहूंगा, प्राण बन को जाएंगे ।।

गाना

बस आप के बिन हे प्रभो ये प्राण रह सकते नहीं;
निर्बल हैं दुखिया हैं मगर दुख अपना कह सकते नहीं।
दुनिया के सारे संकटों की कुछ नहीं परवाह है;
लेकिन जुदाई आप की पल भर को सह सकते नहीं।
माता-पिता, भाई-बहिन, दुनिया के रिश्ते हैं बहुत;
लेकिन किसी को भी यहां, अपना तो कह सकते नहीं।
केवल तुम्हारे प्रेम-मद में मोम हो जाता है दिल;
वरना किसी दुख में 'कुशल' ये अश्क बह सकते नहीं।

सुमित्रा—बेटा राम ! लक्ष्मण तुम्हारा साथ कदापि नहीं छोड़ेगा, इसलिये अधिक विलम्ब करने में क्या चतुराई है। बस साथ ले जाने में ही भलाई है।

राम—अच्छा माता जी ! यदि आपकी भी यही इच्छा है तो मुझे स्वीकार है।

लक्ष्मण—सुमित्रा से) माता जी ! लक्ष्मण चरणों से सिर झुकाता है और बन जाने की आज्ञा चाहता है।

सुमित्रा—हां बेटा अवश्य जाओ ! राम और जानकी की सेवा में मन लगाओ। याद रखना—

गाना

वही घर तेरा है नगर तेरा जहां जानकी जहां राम है।
सदा इनके चरणों में मान है सदा इनकी सेवा में नाम है।।
यही भ्राता माता गुरु तेरे यही देवता यही देव हैं।

यही आस है यही आसरा यही स्वर्ग का तेरे धाम हैं ।।
सदा राग-द्वेष और ईर्ष्या,मद मोह सबका त्याग कर;
रहे प्रीति चरणों में तेरी भक्ति यही निष्काम है ।।
रहे ध्यान इस उपदेश का न हो मन में मेरी भी मामता।
चलो जाओ इनके ही सग बन,नहीं अब तेरा यहां काम है।

लक्ष्मण—माता जी ! आपके वचन सदा प्राणों के साथ रहेंगे ।

कौशल्या—बेटा राम ! चलती बार मुझे भी तुम से कुछ कहना है । आओ! जरा इधर आओ और मेरी बातों पर ध्यान लगाओ!

गाना (लावनी)

दोहा—सुनो राम बेटा जरा इधर लगाकर कान ।
सीता-लक्ष्मण का मेरे रखना बन में ध्यान ।।

लक्ष्मण कोमल है बच्चा है इसको संकट मत पहुंचाना ।
यदि भूल भी कोई कर बैठे तो ध्यान नहीं मन में लाना।।
सीता भी राजदुलारी है इसका भी तुमको ध्यान रहे ।
वह करना बेटा काम वहां जिससे दुनिया में मान रहे ।।
जो कष्ट पड़े खुद सह लेना मत इनको तरसाना बेटे ।
उपदेश जो मैंने दिया तुम्हें उसको न भूल जाना बेटा ।।

राम—माता जी ! आप निश्चन्त रहें । आपके वचनों का अवश्य पालन करूंगा ।

कौशल्या—अच्छा जीवित रहो, भगवान तुम्हारी रक्षा करें ।

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(कोप-भवन)

दशरथ—वियोग ! तू कितना प्रबल है ! तेरा प्रभाव कैसा निश्चल

है ? तेरा नाम सुनते ही मन में हलचल मच जाती है, आत्मा में अशान्ति और विचारों में भागड़ पड़ जाती है । :—

वियोगी को भला संसार में कब चैन आता है ।
विरह की आग में जल के वह परलोक जाता है ।।

[राम, लक्ष्मण, सीता का प्रवेश]

राम—पिता जी ! अब हमारा प्रणाम लीजिए और बन जाने की आज्ञा दीजिये ।

दशरथ—(रोकर) आह विधाता ! यह कौन से पाप का फल है, यह किस अन्याय का दण्ड है ? क्या तूने मेरे भाग्य में तड़प-तड़प कर जान देना ही लिखा था ?

राम—पिता जी ! आप तो ज्ञानी और धैर्यवान हैं, धर्म-नीति में सुजान हैं, फिर सोचिये, इस प्रकार व्याकुल होने से क्या मिलेगा ? फूट-फूट कर रोने से क्या लाभ होगा ? मन को ठिकाने कीजिये और हमें बन के लिये उपयोगी शिक्षा दीजिये ।

कैकेयी—बेटा ! अब तुम्हारे शरीर पर ये राजकीय वस्त्र शोभा नहीं देते, इसलिये लो ये भगवे वस्त्र पहन लो और बन की राह लो ।

राम—लाइये माता जी !

बड़ा आनन्द है हम को मिले उपहार भक्तों के ।
ये प्यारे वस्त्र हैं योगी जनों के और सन्तों के ।।

[तीनों का भगवे वस्त्र पहनना]

दशरथ—बेटा राम ! सीता और लक्ष्मण भी तुम्हारे साथ क्यों आये हैं ? क्या इन की भी बन को तैयारी है ?

राम—पिता जी ! मैंने इनको बहुत समझाया परन्तु ये नहीं माने । अन्त में माताओं की आज्ञा से साथ लाना ही पड़ा ।

दशरथ—हाय बेटा ! तुम तो इनको भी लिये जाते हो मुझे इस विपत काल में किस पर छोड़ जाते हो ?

कौन पूछेगा जो इस मन की अवस्था होगी।
हाय आंखों में निराशा ही निराशा होगी॥

(लक्ष्मण को गले लगाकर) मेरी नन्ही सी कली ! मेरी आशाओं के खिले हुए फूल ! क्या तू भी इस भवन को उजाड़ कर जाने वाला है ?

तू मेरा जीवन भी है घर की मेरे शोभा भी है।
तू न जा बन को कि तू आशाओं की दुनिया भी है॥

(सीता को प्यार करके) बेटी सीता ! मेरी अंधेरी कोठरी के दीपक ! क्या तेरी भी तैयारी है ? क्या अभागे दशरथ को शान्ति देने के लिये तुझे भी यहां ठहरना भारी है :—

किस तरह हाय यह सन्तोष गवारा होगा।
प्राण लुट जाएगे दिल शोक से पारा होगा॥
हाय उस आन मुझे किसका सहारा होगा।
जान का जान से जिस वक्त किनारा होगा॥
लोग देखेंगे उजड़ती हुई दुनिया मेरी।
डूबती मौत के मझधार में नय्या मेरी॥

राम—पिता जी ! इस प्रकार रोने से काम नहीं चलेगा। मन को शान्ति दीजिये और हमें विदा कीजिये।

दशरथ—(कैकेयी से) आह ! हे कुलकलंकिनी ! मुझे क्या मालूम था कि तू ऐसा अकाज करेगी ? सारे नगर को उजाड़ कर श्मशान पर राज करेगी ! आह, विघ्नकारिणी ! तूने सर्वनाश ही कर डाला।

हाय नागिन आज तेरी पूरी घातें हो चलीं।
हा चली दशरथ के बस जीवन की बात हो चलीं॥

राम—महाराज ! अब अधिक विलम्ब न कीजिये, बन जाने की आज्ञा दीजिये।

दशरथ—अच्छा बेटा ! ईश्वर तुम्हारा निगहबान है, परन्तु दशरथ अब कोई घड़ी का मेहमान है। (सुमन्त से) हे सुमन्त ! मेरा

फुलवारी जा रही है तुम भी इनके साथ जाना और बन दिखा कर तथा गंगा स्नान कराकर वापस ले आना।

सुमन्त—जेसी आज्ञा महाराज।

[तीनों का जाना, पीछे सुमन्त का चलना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

[राम, लक्ष्मण और सीता का नगर में जाना और अयोध्या वासियों का दुख पाना।]

राम, सीता, लक्ष्मण का सम्मिलित गाना

तर्ज—छोटी बड़ी सूइयाँ रे……

टेक—जाते हैं बन को सिधार ! हे प्यारे जनता वासियो।
छुटने का दुख है अपार! हे प्यारे जनता वासियो॥

अन्तरा (१) छुटती है अब तो हमसे नगरी यह प्यारी;
है जीवन हमारी, यह प्राणों से प्यारी॥
होवे सदा गुलजार। हे प्यारे……

(२) भूलके लाना नहीं ध्यान हमारा, यह मान हमारा,
सम्मान हमारा।
कहते हैं सब से पुकार। हे प्यारे……

(३) शोक न मानें कभी माता हमारी, हैं दीन बिचारी
हैं कर्मों की मारी।
तुम ही पिता का हो आधार। हे प्यारे……

प्यारे नगर वासियो ! तुम आनन्द से रहो ! हम पिता के वचनों का पालन करने के लिये बनों को जाते हैं और आप लोगों से केवल यही चाहते हैं कि राज भक्त बने रहना और हमारे पिता तथा माताओं के मन को शान्ति दिलाते रहना।

प्रजावासी—हे नाथ ! आपके बिना सारी अयोध्या मरघट के समान है, नगरवासियों का जीवन दुख की खान है। हम आपके साथ चलेंगे।

राम—प्यारे जनों ! अपने परिवार को छोड़कर कहां जाते हो ? बन में जाकर वृथा क्यों कष्ट उठाते हो ?

सीता—भाइयो ! विधाता की करनी अटल जान कर मन को समझाओ और अपने-अपने घरों को लौट जाओ ।

हमारा है यही अशीष नगरी का पसारा हो।
फलो फूलो रहो आनन्द धन सन्तान वाला हो ।।

प्रजावासी—माता जी ! अब नगरी में सुख का कौन सा साधन है ? हमारी तो वही नगरी है जहां आप का दर्शन है ।

[सुमन्त का रथ लेकर आना]

सुमन्त—महाराज ! इस रथ में बैठ जाइये ।

राम—मन्त्र जी ! बनों में रथ कहां से आयेगा ? हमें तो पैदल ही चलना है और इसी में ही आनन्द है ।

सुमन्त—परन्तु महाराज की ऐसी ही आज्ञा है ।

राम—अच्छा ! यदि ऐसा है तो चलो ।

[तीनों का रथ में बैठना, प्रजावासियों का पीछे चलना]

दृश्य नवां

(तमसा नदी का किनारा)

राम—अच्छा नगरवासियो ! तुम्हारे प्रेम के लिये हम बड़े आभारी हैं । परन्तु अब घरों को लौट जाओ और राज-प्रबन्ध में भरत का हाथ बटाओ !

एक नगरवासी—हे नाथ ! जल के बिना मीन और मणि के बिना सर्प रह सकता है परन्तु हम आपके बिना नहीं रह सकते, आपका वियोग किसी प्रकार भी नहीं सह सकते । इसलिए इतनी कृपा कीजिये कि हमें भी साथ चलने की आज्ञा दीजिये ।

राम—अच्छा तो लो ! अब रात्रि हो आई है सब लोग विश्राम करो ।

सब—जैसी आज्ञा प्रभो !

[सब का सो जाना, राम का उठना]

राम—(सुमन्त को जगाकर) हे तात सुमन्त ! उठो, रथ तैयार करो, प्रजा के लोगों को छोड़ जाना ही उचित है, नहीं तो ये फिर हट करेंगे और बनों में जाकर वृथा दुख भरेंगे ।

सुमन्त—किन्तु नाथ ! प्रातःकाल उठने पर इनको बड़ा दुख होगा ।

राम—नहीं, सब समझ जायेंगे और निराश होकर अपने घरों को लौट जायेंगे अन्यथा इनके परिवार की क्या दशा होगी ?

सुमन्त—ठीक है महाराज ! चलिये, रथ पर सवार हो जाइये ।

राम—सुमन्त जी ! रथ धीरे-धीरे चलाइये ऐसा न हो कि उसकी झंकार सुनकर ये लोग जाग पड़ें ।

[तीनों सहित सुमन्त का चले जाना]

एक प्रजावासी—(जाग कर) अरे भाई ! तुम लोग सोये पड़े हो और भगवान राम का कुछ पता नहीं ।

[सब का जागना]

दूसरा—हाय ! बड़ा अन्याय हुआ, प्रभु हमें सोता छोड़कर चले गये, चलो-चलो उन्हें ढूंढें ।

तीसरा—भाई रात-रात में रथ न जाने कितनी दूर चला गया होगा अब हम उन्हें कैसे पा सकते हैं ?

चौथा—हाय हाय ! हम से तो एक मछली का जीवन ही अच्छा है जो अपने प्यारे जल से बिछुड़ते ही प्राण त्याग देती है और हम राम के वियोग में जीवित हैं ।

पहला—भाई ! हमारे भाग्य में ऐसा ही लिखा था अब पश्चाताप करना व्यर्थ है, चलो अब अयोध्या ही लौट चलें !

[सब का जाना, परदा गिरना]

दृश्य दसवां

(श्रृंगवीरपुर)

[राम, लक्ष्मण, सीता का आना, राजा गुह का प्रणाम करके भेंट करना ।]

राजा गुह—मेरे अहो भाग्य हैं जो रघुकुल भूषण श्रीराम ने अपने चरण कमल से इस स्थान को पवित्र बनाया है।

राम—(गुह को छाती लगाकर) प्रिय मित्र ! आज आप से मिलकर मन को बड़ा आनन्द आया है।

गुह—महाराज ! अब नगर में चलकर कुछ दर विश्राम कीजिये और और थोड़ा जलपान करके सेवक को सम्मान दीजिये।

राम—प्यारे सखा ! मुझे पिता की आज्ञा है कि चौदह वर्ष तक नगर में न जाऊं और बनों में रह कर ही तपस्वी का जीवन बिताऊं।

गुह—(आश्चर्य से) ओह ! बड़े आश्चर्य की बात है। महाराज के मन में यह क्या समाया, जो आपको बनवासी बनाया ?

लक्ष्मण—भाई ! हमारी सौतेली माता कैकयी ने महाराज से दो वरदान पाये जिन में भरत को राजा और हम बनवासी बनाए !

गुह—ओह ! इतना अन्याय। माता और पुत्रों को बनवासी बनाए !

राम—नहीं भाई ! यह सब विधाता की माया है, भाग्य के आगे सभी ने सिर झुकाया है।

गुह—तो महाराज ! कुछ चिन्ता न कीजिये, मुझे आज्ञा दीजिये। आप की सब प्रकार से सेवा बजाऊंगा और जिस वस्तु की आवश्यकता होगी वह यहीं लाऊंगा।

राम—नहीं ! आपके कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। हमें सब प्रकार की सुविधा है। तुम नगर में जाओ और अपना काम सम्भालो।

गुह—जी तो नहीं चाहता परन्तु आपकी आज्ञा है, इसलिये जाता हूं।

[जाना]

राम—भाई लक्ष्मण ! अब जाकर बड़ का दूध लाओ और जटा बढ़ाओ।

लक्ष्मण—जैसी आज्ञा महाराज !

[जाता]

सुमन्त—(रोकर) दूध ! बड़ का दूध ! क्या जटा बढ़ाई जायेंगी ? क्या ताज पहनने वाले शीश पर मुनियों वाली लटा चढ़ाई जायेंगी ? क्या देख रहा हूं प्रभो :—

कहां पृथ्वी पै यह सोना कहां वह उच्च सिंहासन ।
कहां मखमल के वे गद्दे कहां यह धूल में आसन ।।
कभी जिस शीश पर मैंने मुकुट की इक छटा देखी ।
उसी सिर पर विराजी आज मुनियों की जटा देखी ।।

[लक्ष्मण का बड़ का दूध लाना और जटा बढ़ाना]

सुमन्त—बस हो चुकी महाराज ! अब कैकायी की आज्ञा पूरी हो चुकी, यह बन का श्रृंगार अब नहीं देखा जाता; चलिये रथ तैयार है अयोध्या को वापस चलिये ।

राम—यह क्या कहते हो मन्त्री !

सुमन्त—सुनिये प्रभो !

गाना (लावनी)

दोहा—बार-बार विनती करूं दया-सिन्धु जगदीश ।
जो आज्ञा महाराज की कहूं नवा कर शीश।।
जब गमन किया तुमने बनको महाराज के आंसू बहने लगे ।
व्याकुल होकर सिर पीट लिया और रो-रो ऐसे कहने लगे ।।
तुम जाकर इनके साथ सुमन्त इनको बन खूब दिखा लाना ।
गंगा-स्नान करा देना फिर उल्टा यहीं फिरा लाना ।।
अब हाथ जोड़ कर विनती है इतनी करुणा हे नाथ करो ।
बस साथ चलो वापस मेरे मत नगरी तात अनाथ करो ।।
रघुकुल दीपक बुझ जायेगा जीना दुश्वार पिता को हो ।
माता अन्धी हों रो-रो कर जनता बरबाद सदा को हो ।।

राम—

गाना (लावनी)

दोहा—ज्ञानवान हो मन्त्री, सर्व गुणों की खान।
सत्य बराबर तप नहीं, कहते वेद पुराण॥
जिस सत्य पै अपना जीवन भी शिबि, हरिश्चन्द्र ने वारा है।
और रन्तिदेव, राजा बलि ने संकट में जिसको धारा है॥
यह अहो भाग्य है मेरा जो वह सत्य मिला आसानी से।
क्या मूरख बन कर छोड़ चलूं मैं उसको ही नादानी से॥
अब लौट जाओ मानों कहता, कहना कर जोड़ पिता जी से।
यह कष्ट है चौदह वर्षों का काटो बस इस को राजी से॥
मैं छोड़ बनों को नगरी में विश्राम नहीं कर सकता हूं।
जिससे अपयश हो दुनियां में वह काम नहीं कर सकता हूं॥
दोहा—हितकारी हो मन्त्री हो तुम पिता समान।
लौट जाओ वापस अभी, वचन हमारा मान॥

सुमन्त—लौट जाऊं ? परन्तु राम ! जब महाराज पूछेंगे तो मैं क्या उत्तर दूंगा ? जब वे दुखी होंगे तो उन्हें किस प्रकार शान्त करूंगा ?:—

फिर रहा है उनकी आंखों में नजारा मौत का।
लुट गये सारे सहारे है सहारा मौत का॥

राम—सुमन्त जी ! आप जानते है कि शूरवीर संकट से नहीं घबराते हैं, आपत्ति आने पर भी पग पीछे नहीं हटाते हैं।

चौपाई

सिंह, सती अरु शूर सिपाही।
मार्ग तजें नहि संकट मांही॥
जो बन बीच सकल दुख पाऊं।
वचन हार पीछे नहिं जाऊं॥
तात ! सहेहु यह संकट भारी।
अवध जाहु एहि सत्य विचारी॥

सुमन्त—अच्छा न सही ! यदि आप अपनी प्रतिज्ञा से विवश हैं तो न सही; परन्तु लक्ष्मण और जानकी को तो बनवास नहीं मिला है, उनको तो बनों में रहने के लिये किसी ने नहीं कहा है। उन को ही वापस भेज दीजिये, महाराज की शान्ति का कुछ तो उपाय कीजिये।

लक्ष्मण—सुनिये ! मन्त्री जी ? पहिले मेरी एक बात ध्यान से सुनिये।

गाना (लावनी)

दोहा—तुम्हीं कहो हे मन्त्री ! है वह कैसा राज ?
प्रजाजनों पर जिस जगह निठुर हुए महाराज ॥
उस नगरी का उस राजा का फिर कौन भला सम्मान करे।
जो आप रहे निज महलों में वन गमन प्रिय संतान करे ॥
उस जगह हमारे जीवन का कैसे फिर कहो गुजारा हो।
जिस जगह भेद हो आपस में इक शत्रु हो इक प्यारा हो ॥
जिस राज के राजा भरत लाल कैकयी शीलवन्ती माता।
उस राज का नाम तो लेते ही आंखों में खून उतर आता ॥
तुम जाकर यों ही कह देना जो हमने वचन सुनाये हैं।
अब वापस लौट नहीं सकते उस राज से हम भर पाये हैं ॥

राम—प्यारे मन्त्री ! लक्ष्मण की बातों पर ध्यान न देना और मेरी ओर से पिता जी को कहना कि वे हमारे वियोग में आहें न भरें, इस दुःख को शान्ति से सहन करें। चौदह वर्ष जल्दी ही बीत जायेंगे और अयोध्या लौट कर हम उनके दर्शन पाएंगे !

सुमन्त—(सिर पीट कर) धिक्कार है ! धिक्कार है ! अभागे सुमन्त तुझे लाख बार धिक्कार है। कान सुन रहे हैं, हृदय मनन कर रहा है, बुद्धि सोच रही है; परन्तु उपाय ! उपाय कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूं ? हे विधाता ! ऐसे विकट समय पर क्या करूं ?

दिल तड़फ उठा है और जलने लगी छाती मेरी।
हाय! इस घटना से पहले मौत आ जाती मेरी।।

[मूर्छित हो जाना]

राम—भाई लक्ष्मण ! सुमन्त जी मूर्छित हो गए हैं, अब हमें आगे चल देना चाहिये ! नहीं तो इनका दुःख हम से न देखा जायगा और हमारे साहस में विघ्न आयेगा ?

लक्ष्मण—जैसी आज्ञा प्रभु !

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य ग्याहरवां

(गंगा का किनारा)

राम—अरे भाई केवट ! शीघ्र अपनी नाव लाओ और हमें गंगा पार लगाओ ।

[केवट चुप रहता है]

राम—भाई हमें देर हो रही है, अब अधिक विलम्ब न करो और नाव लाकर हमें पार करो !

[केवट फिर चुप रहता है]

राम—अरे भाई ! क्या बात है ? तुम शीघ्र नाव क्यों नहीं लाते हो ?

केवट—महाराज ! मैं आपका सारा भेद जानता हूं। आपके चरणों की रज में जीव डालने की कला है। आपको नाव पर चढ़ाकर क्या मुझे अपना व्यवसाय खोना है, दाने-दाने को मोहताज होना है।

राम—अरे भाई ! हम तुम्हारी रहस्य भरी, बातों को कुछ भी नहीं समझे। अपना तात्पर्य खोल कर बताओ।

केवट—सुनिये प्रभो !

गाना

टेक—मेरी इक विनय सुनो भगवान, प्रभो तुम अनुपम दया निधान !

अन्तरा (१) पार लगाऊं कैसे स्वामी ! मन में इक संकोच ।
क्षमा कीजिये नाथ ढिटाई हूं अज्ञानी पोच ॥
नहीं कुछ ज्ञान वान विद्वान-मेरी इक……
(२) चरण कमल की रज छूते ही उड़ी अहिल्या नार ।
वह पाषाण कठोर प्रभो जी ! बना रूप सुकुमार ॥
गगन को उड़े नाव श्रीमान-मेरी इक……
(३) जो उड़ गई नाव तो भूखा मरे मेरा परिवार ।
पहले चरण पखारन दो प्रभो पीछे करदूं पार ।
दीजिये कुशल यही वरदान-मेरी इक……

हे प्रभो ! यदि आपको पार होना है तो इतनी कृपा कीजिये कि मुझे अपने चरण धोकर रज को छुड़ा देने की आज्ञा दीजिए ।

राम—ओहो ! यह बात है ! अच्छा भाई तुम अपनी यह भी शंका मिटाओ । :—

गाना

तर्ज—सुनो जी रघुराई, कहूं कर जोड़

टेक—चरण धो भाई ! करो भ्रम दूर ।

अन्तरा (१) जल लाकर पग धोले मेरे, नहीं कोई कठिनाई ।
फिर जल्दी से पार उतारो, कितनी देर लगाई ॥
करो भ्रम दूर……
(२) जान गये हम जो सोचा है, तुम ने मन में भाई ।
इस निर्मल बुद्धि की जग में, नित नित होत बड़ाई ॥
करो भ्रम दूर……
(३) गंगा जी के पार उतारो, लो अपनी उतराई ।
सब संकोच छोड़ भय्या दो, नय्या उधर लगाई ॥
करो भ्रम दूर……

[केवट का कटोती में जल लाकर चरण धोना और सबका आच करना ।]

केवट—बोलो अधम उबारन की जय ! (राम से) आइये नाथ ! अब नाव में आइये !

[तीनों का नाव में बैठकर जाना और सीता जी का गंगा-स्तुति गाना]

सीता जी— **गाना**

तर्ज—तुम बिन हमरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरधारी

टेक—शरण हूं तेरी गंगा मैया-नय्या पार लगादे, नय्या पार लगादे ।

अन्तरा—तरण-तारिणी,पाप नाशिनी, जग में सदा कहाती हो ।
भवसागर से दुष्ट जनों का बेड़ा पार लगाती हो ।।
हमको भी अब कलिमल-हरणी, निर्मल सबल बना दे,
नय्या पार······

अन्तरा—प्राणनाथ और लक्ष्मण जी संग लौट 'कुशल' से आऊं ।
चरण कमल में पुष्प, सुगन्धी, अक्षत धूप चढ़ाऊं ।।
बन-जीवन में नित सुख पावें, ऐसा वर माता दे,
नय्या पार······

[पार उतरना]

सीता—लो भाई ! अब तुम अपनी उतराई लो ! (अंगूठी देना)

केवट—(पैरों में गिरकर) माता जी ! मुझे क्यों लज्जित करती हो ! आज मैंने क्या नहीं पाया, मेरे जन्म-जन्मान्तरों के पापों का नाश हो गया,सारी दरिद्रता जल कर भस्म हो गई । हे प्रभो! मैं आपकी करुणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता ।

राम—प्यारे भाई ! तुम कोई संकोच न करो ! जो कुछ हम दे रहे हैं, उसे ही सब कुछ जान कर ग्रहण कर लो ।

केवट—महाराज ! आप क्या कहते हैं ? आज विधाता ने मेरे परिश्रम का सारा फल दे दिया मुझे क्या चाहिये ?

राम—नहीं भाई ! ऐसा न करो, कुछ तो ले ही लो ?

केवट—अच्छा प्रभो ! यदि आपकी यही इच्छा है तो :—

चौपाई

नाथ विमल भगती वर देहू।
भव-सागर-चिन्ता हर लेहू ॥
स्वामी जनम जनम फल पाऊं।
जो चरणन-अनुराग बढ़ाऊं ॥

राम—एवमस्तु !

[तीनों का चल देना, परदा गिरना]

दृश्य बारहवां

[सुमन्त जी मूर्छित पड़े हैं, गुह और उसके सेवक आते हैं]

गुह—अहा ! मन्त्री जी को अभी तक होश नहीं आया है; राम के वियोग ने इनको कितना व्याकुल बनाया है ? (पुकार कर) सुमन्त जी ! सावधान हूजिये ! बुद्धि से काम लीजिये ! यदि आप ही इस प्रकार दुखी होंगे तो महाराज को कैसे संतोष आयेगा। माताओं को धीरज कौन बंधाएगा ?

सुमन्त—(करवट लेकर) भाई ! अब धैर्य का सहारा भी रहा हो ? अच्छा अब तुम ही इतनी कृपा करो कि राम को समझा कर वापस भेज दो।

गुह—महाराज प्रभु रामचन्द्र जी तो आप को मूर्छित छोड़ कर चले भी गये हैं ! यह आप कैसी बात करते हैं !

सुमन्त—चले गये हैं ! तो मैं अयोध्या को लौट कर कैसे जाऊंगा ? यहीं किसी वृक्ष से सिर फोड़ कर मर जाऊंगा।

गुह—महाराज ! अयोध्या में आपकी प्रतीक्षा हो रही होगी, सारी नगरी विरह में जान खो रही होगी। इस लिये अब अधिक देर न लगाइये और घर वापिस लौट कर सब को समझाइये! (सेवकों से) देखो ! तुम सुमन्त जी के साथ चले जाओ और इन्हें सकुशल अयोध्या पहुंचाओ।

सेवक—जैसी आज्ञा महाराज !

[चारों सेवकों का सुमन्त जी को सहारा देकर ले जाना, परदा गिरना]

दृश्य तेरहवां

(तमसा नदी का किनारा)

सुमन्त—अन्धेर ! अन्धेर ! महा अन्धेर ! भाग्य का बड़ा भयानक फेर ! आशा टूट गई ! तकदीर फूट गई ! सारा प्रयत्न असफल रहा, सारी चेष्टा बेकार गई ! सुमन्त ! अभागे सुमन्त ! राम बन को जा रहे है और तेरे पग अयोध्या की ओर दौड़ लगा रहे हैं। क्या कहेगा ? जब महाराज पूछेंगे तो तू क्या कहेगा ?

हाय पापी किस तरह महाराज को समझाएगा।
उस दुःखी मन को भला सन्तोष कैसे आएगा ।।

दशरथ ! बूढ़े और निराश दशरथ ! आज तुम्हारे हृदय में अग्नि सुलग रही होगी ! आह ! मैं क्या करूंगा ! उस अग्नि को और भी भड़काऊंगा, उस मन को और भी दुखाऊंगा।

सूखकर मुरझा गई है जिसकी आशा की कली।
हाय उस दिल में मचेगी और गम की खलबली ।।
आह ! वह निर्दोष जिसका घर अंधेरा हो गया।
रात गुजरी रोते-रोते और सवेरा हो गया ।।

[दुखी होकर बैठ जाना]

सेवक—महाराज ! मन को शान्ति दीजिये और आगे की ओर पग बढ़ाइये !

सुमन्त—बस भाई ! अब तमसा नदी का किनारा आ गया है इस लिये तुम लौट जाओ और राजा गुह को सदेश पहुंचाओ कि सुमन्त ठीक पहुंच गया !

सेवक—महाराज ! हम आपको अयोध्या तक पहुंचाकर ही चले जायेंगे ।

सुमन्त—नहीं ! अब अयोध्या दूर ही कितनी है ! तुम अभी लौट जाओ।

सेवक—जैसी आज्ञा महाराज !

[जाना]

दृश्य चौदहवां

(कोप भवन)

[दशरथ पड़े रो रहे हैं,तीनों रानियां वशिष्ठ और दासी उपस्थित हैं]

दशरथ—(कौशल्या से) प्रिय ! अब मेरा अन्तिम समय निकट आ रहा है प्यारे राम का वियोग मुझे शोक के आंसू रुला रहा है। अब मुझे केवल यही कहना है कि मैंने तुम्हारे साथ जो अन्याय किया है तुम उसे क्षमा कर देना, मेरे अपराध को भुला कर मेरी आत्मा को शान्ति देना।

तुम्हारे दिल में मैंने ही कपट का तीर भोंका है।
तुम्हारे लाल को मैंने ही प्यारी,बन को भेजा है॥

कौशल्या—क्या कहने लगे प्राणनाथ ! ऐसी बातें कह कर मुझे पाप की भागी न बनाओ, निराशा में डूबे हुए प्राणों को अधिक कष्ट न पहुंचाओ।

है मुझे आसान सह लेनी जुदाई राम की।
पर तुम्हारे बिन कोई सूरत नहीं आराम की॥

दासी—(आकर) महाराज ! मन्त्री जी वापस आ गये हैं।

दशरथ—उन्हें शीघ्र अन्दर ले आओ।

सुमन्त—(एक ओर) घुस आया ! चोर की तरह नगर में घुस आया। आह ! आह ! हे अनाथ अयोध्या ? आज तेरी यह दुर्दशा।

गली, बाजार और घर बार सब सूने ही सूने हैं।
अटारी, महल और दरबार सब सूने ही सूने है॥
इधर कां कां है कौओं की उधर कुत्ते बिलकते हैं।
जहां जमघट था लोगों का वहां उल्लू चहकते हैं॥

दशरथ—(रोकर) सुमन्त जी ! आप तो अकेले ही आ गये, क्या मेरो

फुलबारी को बन में ही छोड़ आए ? क्या मेरी हंसों की जोड़ी को साथ नहीं लाये ?

सुमन्त—महाराज ! आप तो विद्वान और ऊंच नीच को जानने वाले हैं। क्या राम आपके वचनों को झूठा करके वापस लौट आने वाले हैं ?

दशरथ—(तड़प कर) हाय ! हाय ! अन्तिम आशा भी टूट गई ! अब मैं कदापि न जीऊंगा !

सुमन्त—महाराज, दुख-सुख हानि-लाभ, संयोग और बियोग सब कर्मों अनुसार होता है। ज्ञानी मनुष्य सबको एक समान जानता है और अज्ञानी रोता है :—

विधाता की गति टाले नहीं टलती है दुनिया में।
वही ज्ञानी हैं जो सन्तुष्ट हैं ईश्वर की इच्छा में।।

दशरथ—अच्छा, यह तो बताओ कि मेरे राज दुलारों ने किस प्रकार बन-गमन किया ?

सुमन्त—महाराज ! पहला पड़ाव तमसा नदी के किनारे हुआ ! वहाँ से अयोध्या वासियों को लौटाया गया। इसके बाद शृंगवीर पुर में राजा गुह से भेंट हुई और राम ने बड़ का दूध मंगा कर जटा बढ़ाई। फिर गंगा जी के तट पर पहुंच कर कुछ देर विश्राम किया और जानकी सहित दोनों भाई मुझे मूछित छोड़कर गंगा पार हुए तथा बन को सिधार गये।

दशरथ—क्या उन्होंने चलती बार कुछ नहीं कहा !

सुमन्त—महाराज ! राम का स्वभाव सदैव की भांति गंभीर था; उनके मुख पर शान्ति की आभा झलक रही थी। उन्होंने मुझे अनेक प्रकार से समझा कर कहा कि—

तात चरणों में पिता जी के नमस्कार मेरा।
अरु नगर वासियों को आखरी है प्यार मेरा।।
कहना उनसे न करें याद न जल नैन भरें।
होके संतुष्ट रहें बस यही उपकार करें।।

दशरथ—यदि कुछ और भी कहा हो, तो वह भी बताओ।

सुमन्त—हां ! उन्होंने यह भी कहा था कि माताओं से मेरा प्रणाम कहना और उन्हें हर घड़ी यह कह कर समझाते रहना कि:—

बन में आराम से हैं लाल तुम्हारे माता।
चरण छूवेंगे वे तत्काल तुम्हारे माता ॥

दशरथ—प्यारे सुमन्त ! उन्होंने भरत को तो याद नहीं किया ?

सुमन्त—किया था और उनके नाम यह सन्देश दिया था कि वे आनन्द से राज करें और हमारी ओर की कोई चिन्ता न करें दीन और अनाथ की सहायता अपना कर्त्तव्य मानें और प्रजा के कल्याण में अपना कल्याण जानें।

कौशल्या—और मेरे लक्ष्मण का क्या हाल था ?

सुमन्त—लक्ष्मण जी को कुछ क्रोध था। वे कहते थे कि जिस राज्य में न्याय नहीं, हम वहा लौटकर कदापि न जाएंगे ! केवल राम के अनुराग में ही जीवन बिताएंगे :—

हमें है प्रेम रघुवर से यह सब संसार मिथ्या है।
न हमको राज इच्छा है न कुछ सुख की ही इच्छा है ॥

दशरथ—हां ! लक्ष्मण ने ठीक कहा है। निस्सन्देह मैं अन्यायी हूं, मैं पापी हूं, मैंने न्याय का गला घोटकर अन्याय का साथ दिया है। परन्तु बेटा लक्ष्मण ! इस समय मैं मरने जा रहा हूं। तुम मेरे दोषों को भूल जाना, मेरे पापों को मन में न लाना।

सुनो यह आखरी अरदास मरते की लखन बेटा।
करो अपराध को मेरे बस अब मन में दमन बेटा ॥

सुमित्रा—सुमन्त जी ! कुछ जानकी का भी तो वृत्तान्त सुनाओ !

सुमन्त—वे राम के चरणों में बहुत सुखी थीं। उन्होंने केवल इतना ही कहा था कि मेरा पतिव्रत-धर्म जान के साथ है, इसलिये अयोध्या लौट जाना असम्भव सा बात है। अन्त में प्यारे राम ने गुरुजी के नाम यह सन्देश दिया कि अब नगरी की रक्षा और माता-पिता की शान्ति का भार उन्हीं पर है, इसलिये

जब तक भरत जी आयें गुरुदेव सब कार्य शान्ति पूर्वक चलायें और पिता-माताओं का समझायें।

दशरथ—बस! वर्षों की लीला अब समाप्त हो रही है! अभागे दशरथ की आत्मा परलोक यात्रा के लिये सावधान हो रही है।

कौशल्या—महाराज! धैर्य धरो! होनी बलवान है, विधाता की गति महान है।

दशरथ—हां प्रिय! आप सत्य कहती हैं। निस्सन्देह! होनी बड़ी बलवान है। ओह अपने जीवन मे मैंने क्या नही देखा? मेरी युवावस्था थी; उमगे जोश मार रही थीं; एक दिन आखेट खेलने जगल में गया, नदी की ओर से आती हुई आवाज पर हिरण जान कर शब्द बेधी बाण चला दिया। आह! वह हिरण एक तपस्वी का दिल था; दो अंधों के कलेजे का टुकड़ा था; शान्तु का पुत्र श्रवण कुमार नदी पर जल लेने आया था; मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि मैंने किस पर तीर चलाया था। आह! उस निर्दोष ने कई घण्टे तड़प-तड़प कर दम छोड़ दिया। और मेरी आत्मा पर पश्चाताप का वज्र तोड़ दिया। अन्त में उसके अन्धे माता पिता ने यह शाप दिया कि दशरथ! हमारी तरह सन्तान के विरह में तेरी भी जान जायेगी और याद रखना कि अन्तिम बार तुझे भी शान्ति न आयेगी। आह! प्यारो! मैं चला! मेरा दम निकला! अच्छा मुझे विदा करो! बेटा राम क्षमा करना! प्यारे लक्ष्मण! क्षमा करना! जनक दुलारी सीते क्षमा करना! राम! हे राम!

[प्राण त्याग देना]

कौशल्या—(सिर पीट कर) हाय! प्राणनाथ! आप तो सचमुच ही परलोक चल दिये। हाय विधाता! हमारे सिर पर आपत्ति का कैसा पहाड़ गिर पड़ा।

गाना— हाय स्वामी चल दिये मुझ को अकेली छोड़कर।
तुम बिन मर जाऊंगी दीवार से सिर फोड़ कर॥

उस तरफ वे प्राण से प्यारे मेरे बन को गये।
इस तरफ तुम भी हो जाते मुझ से नाता तोड़कर॥
कौन मुझ कर्मों की मारी को दिलासा दे यहां।
किस तरह जोऊंगी मैं सारे सहारे छोड़ कर॥
हो गई मेरे लिये सारी अयोध्या शोक घर।
चल दिये अपने-पराये अब कुशल मुंह मोड़ कर॥

सुमित्रा—हाय! प्राणनाथ! मैं लुट गई।

गाना चले हो छोड़ किस पर नाथ! अब आंसू बहाने को।
अभागी रह गये हैं हम यहाँ संकट उठाने को॥
उमड़ कर हाय! चारों ओर से दुख की घटा आई।
नगर पर संकटों की दम-बदम झड़ियां लगाने को॥
जिधर देखें उधर ही बस निराशा ही निराशा है।
रहा है कौन अब दुखियाओं के धीरज बन्धाने को॥
'कुशल' यह भाग्य भी कैसा निठुर अब बन गया देखो।
बहाने ढूंढता है नित नये हमको सताने को॥

वशिष्ठ—देवियो! धैर्य धरो, अधिक रुदन न करो। रोने से क्या फल मिलता है? ऐसे समय तो शान्ति से ही काम चलता है। अब जितने शीघ्र हो सके भरत जी को बुलाने का उपाय करना चाहिये और उनके आने तक महाराज की मृतक देह को सुरक्षित रखना चाहिये!

कौशल्या—महाराज! ये उपाय आप ही कर सकते हैं।

वशिष्ठ—अच्छा, मैं अभी दूत को भेजकर भरत को बुलाता हूं और एक बड़े पात्र में तेल भरवाकर महाराज का मृतक शरीर रखवाता हूं। (द्वारपाल से) द्वारपाल! तुम अभी जाकर राज-दूत को हमारी आज्ञा सुनाओ कि तुरन्त कैकेयपुर जाकर भरत को बुला लाए।

द्वारपाल—जसी आज्ञा ऋषिराज!

[जाना, परदा गिरना] आरती

सातवां अंक

दृश्य पहला

(कैकेयपुर में भरत का शयन गृह)

[भरत जी को स्वप्न में राम बन-गमन का दृश्य दिखाई दे रहा है]

भरत—(नींद से चौंककर) हैं ! यह क्या ? अवध के महलों में शोक का समागम ! राज दरबार में अशान्ति का पहरा (सोचकर) नहीं, कुछ नहीं, स्वप्न की बात है, इसका क्या विश्वास है (फिर सो जाना किन्तु कुछ देर बाद फिर चौंकना) हैं, फिर वही दृश्य ! फिर वही मन को अधीर कर देने वाली लीला ! राम की बन की तैयारी ! सीता का राज महल का त्याग ! यह क्या हो रहा है प्रभो ! (फिर सो जाना और फिर उठना) न सोने दिया ! इस भयानक स्वप्न ने फिर भी न सोने दिया। आह ! फिर वही भयंकर दृश्य, फिर वही डरावना स्वप्न ! ओह ! दिल धड़क रहा है, कलेजा फड़क रहा है, हे जगदीश! आज यह कैसा परिवर्तन होने वाला है ?—

गाना

क्या जानूं क्या हुआ है ? दिल बैठा जा रहा है।
तारे से टूटते हैं अन्धेर छा रहा है॥
देखा वह स्वप्न मैंने जो आज तक न देखा।
मानो कोई अवध पर बिजली गिरा रहा है॥
घर बार सब उजड़ कर खण्डर बने हैं मानो।
सारा नगर खड़ा है आंसू बहा रहा है॥

तेरी गति विधाता ! यह क्या हमें दिखाया ?
जिसके विचार से ही मन तलमला रहा है !!

[शत्रुघ्न का प्रवेश]

शत्रुघ्न—भ्राता जी ! आज आप कुछ घबराये हुए से जान पड़ते हैं। क्या कोई नई घटना घट गई है।

भरत—क्या बताऊं भाई ! तुम देख ही रहे हो कि कुछ दिनों से मन अधीर सा रहता है, चित्त चंचल सा हो रहा है, और आज के स्वप्न ने तो सारा ही सन्तोष धूल में मिला दिया; हृदय को बिल्कुल ही पागल बना दिया। न जाने यह अधीरता क्या करके रहेगी ?

शत्रुघ्न—भ्राता जी ! स्वप्न की बात तो बिल्कुल निर्मूल होती है उस पर विश्वास करना एक प्रकार की भारी भूल होती है।

भरत—नहीं ! यह स्वप्न, स्वप्न नहीं कहा जा सकता, मेरा यह असन्तोष खाली नहीं जा सकता !

[योद्धाजीत का प्रवेश]

योद्धाजीत—बेटा भरत ! अयोध्या से एक दूत आया है जो गुरु वशिष्ठ जी का कोई सन्देह लाया है।

भरत—हां ! मैं तो पहले हो कह रहा था कि कोई नथा समाचार आने वाला है। अच्छा मामा जी ! वह दूत कहां है ? मैं उससे मिलना चाहता हूं।

योद्धाजीत—द्वार पर खड़ा है, मैं अभी बुलाता हूं।

[दूत का आना]

भरत—क्यों भाई ! क्या संदेश लाया है ?

दूत—महाराज ! आपको गुरुदेव ने बुलाया है।

भरत—अच्छी बात है। मैं अभी चलता हूं। अयोध्या में सब प्रकार से कुशल तो है ना ?

दूत—महाराज ! गुरु जी का आदेश है कि आप को तुरन्त बुला कर ले जाऊं; इसके अतिरिक्त और कुछ न बताऊं।

भरत—अच्छा मामा जी ! जल्दी रथ तैयार करा दीजिये और हमें जाने की आज्ञा दीजिये !

योद्धाजीत—हां बेटा ! अवश्य जाना चाहिये। मैं अभी रथ तैयार कराता हूं, तुम वस्त्र पहन कर आ जाओ !

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

(अयोध्यापुरी)

भरत—आह विधाता ! नगरी की यह दुर्दशा ! मुंडेरों पर कौवे बोल रहे हैं, बाजारों में सियार डोल रहे हैं। बाग बगीचे और ताल शोभाहीन प्रतीत होते हैं, पशु चरना छोड़ कर आलस्य में पड़े सोते हैं। जो कोई आता है चुपचाप प्रणाम करके चला जाता है, मानों किसी के मुंह में जबान नहीं या किसी से हमारी जान-पहचान नहीं।

गाना

दिशाएं रो रही हैं कुल नगर में शोक छाया है।
विधाता! आज क्या अशगुन इन आंखों को दिखाया है।।
भवन सूने से लगते हैं गली बाजार निर्जन हैं।
रची है आज क्या रचना प्रभो यह कैसी माया है ?
निराशा गूंजती सुन पड़ रही है वायु-मंडल में।
हर इक वस्तु के अन्तर में विरह का रंग पाया है।।
जहां आनन्द का घर था कुशल है शोक का वासा।
न जाने आज क्या संसार ने पलटा सा खाया है।।

शत्रुघ्न—निस्सन्देह भ्राता जी ! चारों ओर अशगुन ही होते जा रहे हैं, जो किसी भारी दुर्घटना का पता बता रहे हैं।

भरत—आह भाई ! नगर के समस्त व्यवहार उलटे दिखाई पड़ रहे हैं। मानों चारों ओर से अंगार झड़ रहे हैं। :—

किसी के शोक में देखो सकल घर-बार रोते हैं।
कहीं बच्चे बिलखते हैं कहीं परिवार रोते हैं।।
हुआ है शोक का संचार नगरी की हवाओं में।
निराशा छा रही है कुल अयोध्या की दिशाओं में।।

शत्रुघ्न—चलो भ्राता जी! महल में चल कर ही इसका कारण पूछें! यहां कोई न बतायेगा।

[दोनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(कैकेयी का महल)

[भरत और शत्रुघ्न को देखकर आरती का थाल सजाती है]

कैकेयी—आओ बेटा! तुमने तो आने में बड़ी देर लगाई। कहो कैकेयपुर में तो सब कुशल हैं?

भरत—हां माता जी! सब प्रकार से कुशल हैं। परन्तु आज पिता जी और भाई राम-लक्ष्मण कहां हैं?

कैकेयी—बेटा! पहले कुछ विश्राम करलो, थोड़ा जल-पान करलो फिर सब कुछ ज्ञात हो जायगा।

भरत—नहीं! जब तक मैं उनके दर्शन न कर लूंगा, मुझे चैन न आयेगा।

कैकेयी—बेटा, इतनी जल्दी क्या है, मैंने सब कुछ ठीक कर रखा है।

भरत—क्या ठीक कर रखा है? बताओ, जल्दी बताओ! पिता जी और भाई राम-लक्ष्मण जी कहां हैं?

कैकेयी—बेटा! मथरा दासी ने मुझे बड़े अच्छे अवसर पर सावधान किया, नहीं तो सारा ही कार्य बिगड़ जाता और फिर हाथ मलने के अतिरिक्त कुछ हाथ नही आता।

भरत—आज तुम कैसी रहस्य भरी बातें कर रहो हो माता जी? पहले जो कुछ मैं पूछ रहा हूं, उसका उत्तर दो।

कैकेयी—हां, कह तो रही हूं कि मैने सारा काम बना छोड़ा परन्तु खेद है कि महाराज ने मगल के समय ही दम तोड़ा।

भरत – हैं ! क्या पिता जी स्वर्ग सिधार गये ?

कैकेयी—हां बेटा !

भरत—ओह ! विधाता ! यह कैसा दुर्दिन दिखाया, मैं तो अन्तिम बार दर्शन भी न करने पाया ! हाय-हाय !

करेगा कौन अब संसार में यों मामता मेरी।
खबर अब कौन लेगा आपके पीछे पिता मेरी।।

[मूर्छित होकर गिरना]

कैकेयी—उठो बेटा, मरना जीना तो विधाता के अधिकार में है।

शत्रुघ्न—परन्तु माता जी ! पिता जी ने कैसे प्राण त्यागे ? क्या कुछ रोग हो गया था ?

कैकेयी—कुछ भी नहीं ! राम के वियोग के कारण कुछ पागल से हो गये थे; बस उन्हीं का नाम लेते-लेते परलोक सिधार गये !

भरत—(उठकर) हैं ! राम का वियोग ! यह क्या ? राम कहां चले गये थे ?

कैकेयी—राम का बन जाना ही तो उनकी मृत्यु का कारण बना बेटा !

भरत—राम का बन जाना ! यह कैसी बातें कर रही हो ?

कैकेयी—मैं ठीक कह रही हूं बेटा ! एक बार मैंने महाराज से दो वरदान पाए थे। जब राजा तुम्हारा अधिकार छीन कर कौशल का राज्य राम को देने लगे तो मैंने मंथरा के कहने से सुअवसर जानकर महाराज से अपने दोनों वरदान मांग लिये। एक में तुम्हारे लिये राज्य और दूसरे में राम को चौदह वर्ष का बनवास।

भरत—हाय ! सर्वनाश ! (गिरना)

शत्रुघ्न—तो क्या ! राम के बन जाती बार किसी ने भी उन का साथ न दिया ? और वे अकेले ही चले गये !

कैकेयी—नहीं, लक्ष्मण और जानकी ने उनके साथ जाना ही स्वीकार किया और तीनों के जाते ही महाराज का स्वर्गवास हुआ।

भरत—(व्यंग से) माता जी ! यह तुमने बड़ा सुन्दर काम किया ! धन्य है आपको !

कैकेयी—यही तो मैं भी सुनना चाहती थी बेटा। अच्छा अब महाराज की मृत्यु का दुःख भूल जाओ और निश्चिन्त होकर राज का काम चलाओ !

भरत—बस-बस ! मोह में अन्धी हो जाने वाली माता ! अब तुमने मुझे कहीं का न छोड़ा; आज अच्छी तरह मेरा भाग्य फोड़ा।

कैकेयी—क्या राज्य का इस प्रकार आदर करते हो भरत ?

भरत—राज्य ! जिस राज्य ने तुझे अन्धा बना दिया, जिस माया ने तेरी आंखों पर पट्टी बांद दी, जिस मोह ने तुझे पागल कर डाला, क्या मैं भी उसी के चक्कर में पड़कर तेरी तरह अपने कर्त्तव्य को भूल जाऊं :—

मुझे तो राज्य तेरा पापिनी ! विष के बराबर है।
जिसे तू राज्य कहती है वह ककर और पत्थर है ।।

कैकेयी—क्या मेरी भलाई का यही बदला देते हो भरत ?

भरत—भलाई ! इस अन्याय को भलाई कहती हो ! इस पाप को अच्छाई जानती हो! मीन को जल से अलग करना भी भलाई है ? जड़ को काटकर पत्तों को सींचना भी भलाई है ?:—

पिलाया विष मुझे अच्छा किया है प्यार यह तूने।
उजाड़ा मुझको दुनिया से किया उपकार यह तूने ।।
विरह का तीर छाती से किया है पार यह तूने।
लगाया घाव पर मेरे गरम अाङ्गर यह तूने।।
मैं समझा खूब समझा आज तेरी प्रीति नागिन की।
कहां सीखी है तूने हाय पापिन रीति नागिन की ।।

कैकेयी—बेटा ! तुम क्या कहने लगे। क्या यह भी नहीं समझते कि मैंने तुम्हारे लिये कितनी कठिनता से वरदान प्राप्त किये हैं।

भरत—वरदान ! ऐसे वरदान मांगते तेरी जबान न गल गई, तेरे मुख में कीड़े न पड़ गये ! :—

लगी अग्नि भी ममता की न छाती में जरा तेरी।
यों ही चलती रही पापिन कपट की वारणा तेरी।

गाना

तर्ज—तेरी करनी कुटिल माता

टेक—यह कैसा गुल खिलाया है—नगर सूना बनाया है।

अन्तरा (१) दुर्भागिन पापिन भरत, मर जाता यह काश।
यह कैसी माया रची कर डाला कुल-नाश ।।
पिता जी को मिटाया है—नगर सूना······

(२) पहले दिल में मारकर मेरे तीखे बाण।
देकर मुझको राज फिर, करती है सम्मान ।।
यह क्या जी में समाया है—नगर सूना······

(३) लूट लिया इक आन में, नगरी का आराम।
माताए व्याकुल करीं, बन को भेजे राम ।।
सिया को दुख दिखाया है—नगर सूना······

(४) बन-भरमण को चल दिये जब वे मेरे प्राण।
राज-काज पापिन तेरा, विष के मुझे समान।।
कुशल अब बन ही भाया है—नगर सूना······

कैकेयी—तो क्या मेरी सारी चेष्टा निष्फल जायगी ?

मंथरा—और मथरा भी अपने परिश्रम का कुछ पुरस्कार न पायगी !

शत्रुघ्न—(मंथरा को चोटी से घसीट कर) ओ दुष्टा ! चांडाली ! तूने ही राम को बन भिजवाया है ! तूने ही इस वंश का नाश कराया है !

मंथरा—(रोती हुई) हाय भगवान ! मैं मर गई। मैंने ऐसा क्या खोटा किया है जो उसका ऐसा बदला मिल रहा है ?

भरत—भाई ! जाने दो ! स्त्री को मारना ठीक नहीं :—